॥ ओ३म् ॥
आदर्श
नित्यकर्म विधि

प्रकाशकीय

किसी भूभाग पर उद्यान लगाना हो तो उसके लिए भूमि के अनुसार यत्न करना होता है। भूमि समतल करने से लेकर बीज, खाद, पानी डालने के अतिरिक्त उसकी सुरक्षा व अन्यान्य यत्न करने होते हैं। इसी प्रकार मानव माता के गर्भ से बाहर आने के पश्चात् सुकोमल भूमि ही तो है। इसपर जिस प्रकार का उद्यान लगाना हो लगाया जा सकता है। आवश्यकता है तदनुरूप यत्न करने की।

हमारा जीवन यज्ञ का प्रतिरूप है। इसके अन्तर्गत प्रतिक्षण सहज यज्ञ हो रहा है। बाहरी यज्ञ के लिए यत्न व कर्म करना होता है। मानव-जीवन के यज्ञीय व सुचारु, सुसंस्कारित सञ्चालन के लिए वेद में विधान विद्यमान है। यह ऋषिराज दयानन्द की कृपावर्षिणी वृत्ति के फलस्वरूप हमें सहज प्राप्त है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रतिदिन प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि शयन करने तक का विधान निहित है। समय-समय पर विशेष पर्व आदि पर करणीय कर्म भी इसमें हैं। व्यक्तिगत कर्मों के साथ कुछ सामाजिक कार्यों के निर्वहनार्थ भी इसमें दिशा-निर्देश हैं। यह यज्ञीय कर्म मानव-जीवन को आभायुक्त व सार्थक बनाते हैं।

इस पुस्तक को अधिकतम उपयोगी बनाने का यत्न किया गया है। पूज्य स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती के स्नेह प्रसाद के फलस्वरूप इसका सुन्दर प्रकाशन सम्भव हो पाया है। आशा है आपके सुझावों से भविष्य में इसे और उपयोगी बनाया जा सकेगा।

—प्रभाकरदेव आर्य

भजन

(१)

भक्ति कर भगवान् की काम तेरे जो आयेगी
पाप भरी जो आत्मा ऊँची वह उठ जायेगी
पर उपकार के भाव हमेशा अपने अन्दर लाता जा
दोष जो तेरे जीवन में हैं उनको दूर हटाता जा
ज्योति फिर आनन्द की अन्दर ही जग जायेगी ॥ १ ॥
अमृत वेला जाग पवित्र हो अपना आसन जमा
गुण भगवान् के धारण करके दिन-दिन हो नजदीक तू जा
प्रीति प्राणधार की अपना रंग जमायेगी ॥ २ ॥
सत्संगी जो रहा हमेशा ऊपर उठता जायेगा।
दर्शन जब भगवान् के होंगे मुक्ति पद को पायेगा
तृष्णा बनकर सेविका तेरे चरण दबायेगी ॥ ३ ॥
लेकिन गफलत की जो तूने इतना देश ध्यान रहे
दुनिया तेरा साथ न देगी साथी न भगवान् रहे
ममता माया की तुझे उल्टा नाच नचायेगी ॥ ४ ॥

(२)

प्रभु दर्शन करने आये थे, प्रभु दर्शन करना भूल गये।
वेदोक्त डगर पर जाना था, उस पथ पर जाना भूल गये॥
मानव जीवन को पाकर भी, यह उलझन हमसे न सुलझी।
अन्तरयामी का अन्दर ही, हम ध्यान लगाना भूल गये॥
प्रभु दर्शन..............

यम नियमों के साधन द्वारा, अपने को निर्मल कर न सके।
ऋषियों की भाँति ज्योति से, ज्योति का मिलाना भूल गये॥
अपनी ही अविद्या के कारण, भगवान् को समझा दूर सदा।
खुद खेले पापाचारों में, शुभ कर्म कमाना भूल गये॥
प्रभु दर्शन ....

उल्टी मतियों के मतवाले, बँट गये अनेकों भागों में।
बन करके मानव-मानव में, मानवता लाना भूल गये॥
धरती के मानव जितने हैं, भाइयों का सबसे नाता था।
हम हिंसावादी बन बैठे, देवों का जमाना भूल गये॥
प्रभु दर्शन.................
भूलें सुलझाने देश की, फिर प्रभुभक्त दयानन्द आये थे।
ऐसे उपकारी नेता की, आज्ञा का निभाना भूल गये॥
प्रभु दर्शन................

(३)

सोचा है कभी बैठ अकेले दुनिया में क्यों आया है
कितना जीवनकाल में बन्दे सेवा धर्म कमाया है
बचपन खोया खेल-कूद और यौवन मस्त जवानी में
जालिम जुल्म कमाये कितने आकर दुनियादारी में
पापों के इस जाल में फँसकर अपने आप भुलाया है॥ १॥
सोचा है कभी बैठ अकेले.............
बनके पतंगा खुद को झोंका विषयों की है आग में
मद कर्मों की मेख लगा दी शुभ कर्मों के भाग में
नरतन हीरे को क्यों मूरख यूँ ही खाक मिलाया है
सोचा है कभी बैठ अकेले॥ २॥
हुए-सहसा इस धरती पर लाखों योद्धा हो गये
पता नहीं है उनका चलता किस सय्या पर सो गये
मौत के पंजे से हममें जग में कोई नहीं बचा पाया है॥ ३॥
सोचा है कभी बैठ अकेले..............
सोच समझले अब तू प्राणी एक दिन यहाँ से चलना है
काल वली जब आकर पकड़े हाथों को फिर मलना है
ईश्वर चरणों में लग प्राणी चमन ने यूँ समझाया है॥ ४॥
सोचा है कभी बैठ अकेले............

विषय-सूची

—०—

ओ३म्

स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।
स्वाध्याय और प्रवचन में प्रमाद न करें।
—तैत्तिरीयोपनिषद् १।११

प्रेमोपहार

श्री ....

....

.... की सेवा में

सश्रद्ध
सप्रेम भेंट

विनीत—

....

....

....

स्वस्ति
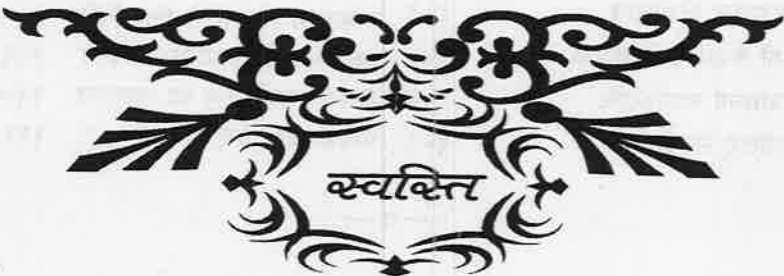
प्रातर्वन्दना

सदा स्त्री-पुरुष १० (दस) बजे शयन और रात्रि के पिछले प्रहर वा ४ (चार) बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म, अर्थ का विचार करना और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ना चाहिए, किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिए युक्त आहार-विहार, औषध-सेवन, सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य-कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वरोपासना भी करनी कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके। इसके लिए निम्नलिखित मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए।

—ऋषि दयानन्द (संस्कारविधि, गृहाश्रमप्रकरण)

प्रभाती

ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम॥ १॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥ २॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥ ३॥
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ ४॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह॥ ५॥

—ऋग्वेद ७.४१.१-५

अर्थ—१. हे स्त्री-पुरुषो! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग प्रभातवेला में स्वप्रकाशस्वरूप, परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त,

प्राण-उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान्, सूर्य-चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की स्तुति करते हैं, प्रातः भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्ययुक्त, पुष्टिकर्त्ता, अपने उपास्य, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करनेहारे और अन्तर्यामी, प्रेरक और पापियों को रुलानेहारे तथा सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की स्तुति, प्रार्थना करते हैं, वैसे प्रातः समय में तुम लोग भी किया करो।

२. प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में पाँच घड़ी रात्रि रहे जयशील, ऐश्वर्य के दाता, तेजस्वी, अन्तरिक्ष के पुत्ररूप सूर्य की उत्पत्ति करने और जो सूर्यादि लोकों को विशेषरूप से धारण करनेवाला है, उस परमेश्वर की हम उपासक लोग स्तुति करते हैं। जो सब ओर से धारणकर्त्ता, जिस किसी का भी, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ का जाननेवाला, दुष्टों को दण्ड देनेवाला और सबका प्रकाशक है और जिस भजनीयस्वरूप परमेश्वर का मैं सेवन करता हूँ, स्तुति करता हूँ, उसी परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना के लिए अन्यों को भी उपदेश करता हूँ।

३. हे भजनीयस्वरूप! सबके उत्पादक, सत्याचार में प्रेरक, ऐश्वर्यप्रद, सत्यधन को देनेहारे, सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यदाता परमेश्वर! आप हमें इस प्रज्ञा को दीजिए और उसके दान से हमारी रक्षा कीजिए। आप गाय और घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को हमारे लिए प्रकट कीजिए। आपकी कृपा से हमलोग उत्तम मनुष्यों से बहुत वीर मनुष्यवाले अच्छी प्रकार होवें।

४. हे भगवन्! आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इस सूर्य के उदयकाल में ऐश्वर्यशाली हों और दिन के मध्यभाग में—मध्याह्न में ऐश्वर्य से युक्त हों तथा सूर्यास्त के समय—सायंकाल ऐश्वर्य से युक्त हों। हे परमपूजित, असंख्य धनप्रदाता परमात्मन्! हम लोग देवपुरुषों की उत्तम प्रज्ञा और सुमति में, उत्तम परामर्श में सदा रहें।

५. हे सकल ऐश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर! जिससे सब सज्जन निश्चय ही आपको पुकारते हैं, आपकी प्रशंसा और गुणगान करते हैं, हे ऐश्वर्यप्रद! आप इस संसार में हमारे अग्रणी, नेता अर्थात् आदर्श, शुभकर्मों में प्रेरित करनेवाले हों। पूजनीय देव परमात्मा ही हमारा ऐश्वर्य हो। आपके कृपाकटाक्ष से हम विद्वान् लोग सकल ऐश्वर्यसम्पन्न होकर, सब संसार के उपकार में तन-मन-धन से प्रवृत्त होवें।

पद्यमय भावानुवाद—

तमोमयी दोषा हुई व्यतीत

प्रात:काल की वेला आई, पावन परमपुनीत।
प्रात: अग्नि अक्षय प्रकाश को, प्रात: इन्द्र वैभव निवास को,
प्रात: वरुण बलनिधि विक्रम को, प्रात: मित्र प्रिय प्राणोपम को,
प्रात: सोम को, प्रात: रुद्र को, भजते भक्त विनीत
तमोमयी दोषा हुई व्यतीत॥ १॥

प्रात: उग्र शुचि प्रभावन्त का, जयस्वरूप वैभव अनन्त का,
राजा, खल-शासनकर्त्ता का, लोकों दिव्य आदि धर्त्ता का,
मन्यमान सर्वज्ञ सभी का, भग भजनीय देव अवनी का,
सेवनीय आराध्य देव का, हम गाते शुचि गीत।
तमोमयी दोषा हुई व्यतीत॥ २॥

सर्वप्रणेता प्रेरक भग हे! सत्य वित्त संप्रेषक भग हे!
दो वरदान हमें प्रज्ञा का, भार वहन कीजे रक्षा का,
गोधन, वाजि सुभग पशुधन से, हमें समृद्ध करो धन-जन से,
हम होवें सम्यक् नृवन्त, बन्धु सुजन नेह-उपवीत।
तमोमयी दोषा हुई व्यतीत॥ ३॥

हम उत्कर्ष प्राप्ति में इस क्षण, हों भगवन्त, पूज्यवर, भगवन्!
सूर्योदय की वेला पावन, दिव्य सुमतियुत हों हम शोभन,
देवों की अनुकूल सुमतियुत हों हम दिव्य प्रतीत।
तमोमयी दोषा हुई व्यतीत॥ ४॥

सुभग बनें भगवान् हमारे, पथ-दर्शक जीवन उजियारे,
हो जावें सौभाग्यवान् हम, सकल देवजन तुझसे प्रियतम!
हों धन-धान्यवान् हम भगवन्, करते मुक्त-कण्ठ तव वन्दन,
होवें हम तव कृपाकोर से धन-वैभव के मीत।
तमोमयी दोषा हुई व्यतीत॥ ५॥

उषा-गीत

कर प्रणाम तेरे चरणों में लगते हैं हम जग के काज,
पालन करने को तव आज्ञा हम नियुक्त होते हैं आज।

अन्तर में व्यापक हो भगवन्! बागडोर पकड़े रहना,
निपट निरंकुश चंचल मन को सावधान करते रहना।

अन्तर्यामी को अन्तःस्थित देख सशंकित होवे मन,
पाप-वासना उठते ही हो नाश लाज से वह जल भुन।

जीवों का कलरव जो दिनभर सुनने में अपने आवे,
तेरा ही गुणगान मान मन प्रमुदित हो अति-सुख पावे।

तू ही है सर्वत्र व्याप्त विभु, तुझमें यह सारा संसार,
इसी भावना से अन्तरभर मिलें सभी में तुझे निहार।

प्रतिपल निज इन्द्रिय-समूह से जो कुछ भी आचार करें,
केवल तुझे रिझाने को प्रभु! सदा सत्य व्यवहार करें॥

ऋषि-आदेश

इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना, उपासना करनी। तत्पश्चात् शौच, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन करके स्नान करे। पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जङ्गल में जाके योगाभ्यास की रीति से (संसार में अनित्यता की भावना से वैराग्य को उत्पन्न कर चित्तवृत्तियों के निरोध का अभ्यास) परमेश्वर की उपासना कर सूर्योदयपर्यन्त अथवा घड़ी-आधघड़ी दिन चढ़े तक घर में आके सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म यथाविधि उचित समय में किया करें।

—संस्कारविधि, गृहाश्रमप्रकरण

क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्। (ऋ० १.६५.५)
प्रातः जागनेवाला प्रबुद्ध होता है, उसे सब स्नेह करते हैं।

ब्रह्मयज्ञ : वैदिक सन्ध्या

[विधिभाग]

सन्ध्या—जिसमें भली-भाँति परमेश्वर का ध्यान किया जाए, वह सन्ध्या है।

सन्ध्या-समय—रात और दिन के संयोग-समय दोनों सन्धियों में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए।

आवश्यक निर्देश—जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासना किया करें—

१. पहले बाह्य, जलादि से शरीर की शुद्धि।

२. राग-द्वेष, असत्यादि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिए।

३. कुशा वा हाथ से मार्जन करें।

४. तत्पश्चात् शुद्ध देश, पवित्र आसन, जिधर की ओर का वायु हो, उधर को मुख करके नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर सङ्कोच करके, हृदय के वायु को बल से निकालके यथाशक्ति रोकें। यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम-से-कम तीन प्राणायाम करें, नासिका को हाथ से न पकड़ें। इस समय परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना हृदय से करें।

५. इससे आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करें।

६. इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बाँधकर रक्षा करें, ताकि केश इधर-उधर न बिखरें। —**ऋषि दयानन्द**

विशेष—ईश्वर का अच्छी प्रकार ध्यान करना सन्ध्या है। सन्ध्याकर्त्ता को चाहिए कि वह मन्त्रानुसार प्रभु के गुणानुवाद में तन्मय होकर, अपने गुण-कर्म-स्वभाव वैसे ही बनाने के लिए अपने प्रभु से आत्म-निवेदन करे! ईश्वर के गुणों की अनुभूतिपूर्वक किया गया आत्म-निवेदन निश्चय ही लाभदायक होता है। वस्तुतः सन्ध्या उस जगत्पति की आज्ञापालन के लिए शक्ति व पवित्रता प्राप्त करने का प्रयासमात्र है, अतः साधक को चाहिए कि व्यवहारकाल में

(सोम) न रिष्यत्त्वावतः सखा। (ऋ० १.९१.८)
हे सोम! तेरा सखा कभी दुःखी नहीं होता।

सन्ध्या में किये गये आत्म-निवेदन के विपरीत आचरण कदापि न करे। मैं तो यहाँ तक कहना चाहूँगा कि अगर हमने सन्ध्या को सांसारिक व्यवहारों में नहीं फैलाया तो सांसारिक व्यवहार और विचार हमारी सन्ध्या में फैलकर व्यवधान डालते रहेंगे। इस प्रकार से हमारी सन्ध्या एक औपचारिक दिखावा ही न रह जाए, हमें उसका वाञ्छित लाभ मिले इसके लिए हमने हर प्रकरण के अनुसार 'आत्म-निवेदन' की आयोजना की है, इसे समय व सामर्थ्य के अनुसार बढ़ाया जा सकता है!

अथ आचमनमन्त्रः

जलपात्र से दाहिने हाथ की हथेली में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र को एक ही बार बोलकर तीन आचमन करें। इससे कण्ठस्थ कफ की थोड़ी-सी निवृत्ति होती है। जल न हो तो आचमन न करें। मन्त्रोच्चारण अवश्य करें—

ओ३म्। शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।
शँयोर॒भिस्र॑वन्तु नः॥ —यजुः० ३६.१२

आचमन करने के पश्चात् हाथ धो लें।

अर्थ—(**देवीः, आपः**) सबका प्रकाशक और सबको आनन्द देनेवाला सर्वव्यापक ईश्वर (**अभिष्टये**) मनोवाञ्छित आनन्द, अर्थात् ऐहिक सुख-समृद्धि के लिए और (**पीतये**) पूर्णानन्द, अर्थात् मोक्षानन्द की प्राप्ति के लिए (**नः**) हमको (**शम्**) कल्याणकारी (**भवन्तु**) हो, अर्थात् हमारा कल्याण करे। वही परमेश्वर (**नः**) हमपर (**शंयोः**) सुख की (**अभिस्रवन्तु**) सर्वदा, सब ओर से वृष्टि करे।

उक्त मन्त्र द्वारा साधक जीवन का उद्देश्य अक्षय-शान्ति और पूर्णानन्द की प्राप्ति स्थिर कर चित्त को शान्त और समाहित करने का प्रयत्न करता है। शाश्वत आनन्द के भण्डार प्रभु की ओर निहारकर वह कह उठता है—

देवीस्वरूप ईश्वर! पूरण अभीष्ट कीजे।
यह नीर हो सुधामय कल्याण-दान दीजे॥

त्वं जोतिषा वि तमो ववर्थ। (ऋ० १.९१.२२)
अपने ज्ञान के प्रकाश से हमारे अज्ञान को नष्ट करो।

आत्म-निवेदन—हे दिव्य गुणोंवाले सर्वव्यापक प्रभुदेव! आप सांसारिक-सुख व मोक्ष-आनन्द के देनेवाले हो। आप हमें सब ओर से सुख-शान्ति प्रदान कीजिए। आप कल्याणकारी हो, हमारा कल्याण कीजिए!

अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः

बाएँ हाथ की हथेली में जल लेकर सीधे हाथ की मध्यमा और अनामिका (दूसरी और तीसरी) अङ्गुलियों से जल-स्पर्श करके पहले दाहिने और फिर बाएँ अङ्गों का निम्नलिखित मन्त्रों से स्पर्श करें—

ओं वाक् वाक्। —इससे मुँह का दायाँ, बायाँ भाग।
ओं प्राणः प्राणः। —इससे नाक का दायाँ और बायाँ भाग।
ओं चक्षुश्चक्षुः। —इससे दायीं और बायीं आँख।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। —इससे दायाँ और बायाँ कान।
ओं नाभिः। —इससे टूँडी।
ओं हृदयम्। —इससे हृदय।
ओं कण्ठः। —इससे कण्ठ [गला]।
ओं शिरः। —इससे मस्तक।
ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। —इससे दोनों बाहु [भुजाएँ]।
ओं करतलकरपृष्ठे। —इससे दोनों हथेली और पृष्ठभाग।

उक्त मन्त्रों द्वारा अपने प्यारे प्रभु की गोद में बैठा हुआ भक्त प्रतिज्ञा करता है कि वह प्रभु के मन्दिररूप शरीर के किसी अङ्ग से कोई पाप-कर्म नहीं करेगा, जिससे वह निर्बल हो। आत्म-निरीक्षण द्वारा वह प्रत्येक अङ्ग की जाँच-पड़ताल करता है और प्रभु से बल और उसके द्वारा यश प्राप्ति की याचना करता है।

साधक का शिवसङ्कल्प

तन-मन-वचन से होंगे हम शुद्ध कर्मकारी।
दुष्कर्म से बचेंगी ये इन्द्रियाँ हमारी॥
वाणी विशुद्ध होगी, प्रिय प्राण शक्तिशाली।
होंगी हमारी आँखें, शुभ दिव्य ज्योतिवाली॥

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसदि। (ऋ० १.९४.१)
प्रभु की संगति (उपासना) से हमारी मति कल्याणी हो।

ये कान ज्ञानभूषित, नाभि महत् सुखारी।
होगा हृदय दयामय! निर्मल नृधर्मधारी॥
भगवान् तेरी गाथा गाएगा कण्ठ मेरा।
सिर में सदा रमेगा, गौरव अनन्त तेरा॥
होंगे ये हाथ मेरे, यश-ओज-तेजधारी।
मेरी हथेलियाँ ये होंगी, पवित्र प्यारी॥

आत्म-निवेदन—हे सर्वशक्तिमन् प्रभुदेव! मेरी वाक् इन्द्रिय और उसकी शक्ति बलवान् हो, मेरी प्राणेन्द्रिय व प्राणशक्ति बलवान् हो, मेरी आँखें व उनकी दृश्यशक्ति बलवान् हो, मेरी कर्णेन्द्रिय व श्रवणशक्ति बलवान् हो। हे स्वामिन्! मेरी नाभि, मेरा हृदय, मेरा कण्ठ और मेरा मस्तिष्क अपने-अपने कार्य में सक्षम व समर्थ होवें। मेरे दोनों हाथ बलवान् व यशस्वी हों, मेरी हथेलियाँ और उनका पृष्ठभाग भी सशक्त और यशस्वी हो।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः

पुनः उसी प्रकार बायीं हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की उन्हीं दोनों अङ्गुलियों से शरीर के अङ्गों पर निम्नलिखित मन्त्रों से मार्जन करें, अर्थात् जल छिड़कें—

ओं भूः पुनातु शिरसि। —इससे सिर पर।
ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। —इससे दोनों नेत्रों पर।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। —इससे कण्ठ [गले] पर।
ओं महः पुनातु हृदये। —इससे हृदय पर।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। —इससे नाभि [टूँडी] पर।
ओं तपः पुनातु पादयोः। —इससे दोनों पैरों पर।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। —इससे पुनः सिर पर।
ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र। —इससे सभी अङ्गों पर।

उक्त मन्त्रों द्वारा भक्त अपने भगवान् के विभिन्न गुणों को अपने विभिन्न अङ्गों में बसाने के लिए सङ्कल्पशील होता है। इस प्रकार अपने सब अङ्गों की पवित्रता सम्पादन कर वह प्रभु-मिलन की तैयारी करता है—

दूरे चित्सन् तळिदिवाति रोचसे। (ऋ० १.९४.७)
दूर होकर भी वह बिजली की तरह समीप ही चमकता है।

प्राणों के प्राण प्रभुवर! मस्तक पवित्र कर दो।
पावन पिता! दयाकर आँखों में ज्योति भर दो॥
आनन्दमय अधीश्वर! हमको सुकण्ठ दीजे।
मेरे हृदय-सदन में, सर्वेश! वास कीजे॥
जग के पिता! हमारी हो नाभि निर्विकारी।
पद भी पवित्र होवें शुभ ज्ञान-ज्योति धारी॥
पुनि-पुनि पवित्र शिर हो, हे सत्यरूप स्वामी!
सर्वाङ्ग शुद्ध होवें, व्यापक विभो नमामि॥

विशेष—इस प्रकरण में प्रभु के एक-एक स्वरूप का सम्बन्ध हमारे एक-एक शारीरिक अङ्ग के पवित्रीकरण से जोड़ा गया है। इस प्रक्रिया को यथावत् जानना व तथावत् व्यवहार करना साधक के लिए अतिशय उपयोगी होगा, यह जानकर स्वचिन्तन के आधार पर आह्लादित करनेवाला यह विचार सभी साधकों के आनन्द-लाभ हेतु प्रस्तुत है।

इस प्रकरण में विशेष ध्यान देनेवाली बात यह है कि यहाँ मानव शरीर के इन अङ्गों को सप्तमी विभक्ति में वर्णित किया गया है। '**सप्तम्यधिकरणे च**'[1] सूत्रानुसार सप्तमी विभक्ति अधिकरण के लिए प्रयुक्त होती है। यह अधिकरण क्या है? '**आधारोऽधिकरणम्**'[2] के अनुसार अधिकरण आधार को कहते हैं। अब विचारणीय यह है कि हमारा कौन-सा अङ्ग किस वस्तु का आधार है, यहाँ उसी वस्तु-तत्त्व की पवित्रता के साथ ईश्वर के तत्तत्स्वरूप का सम्बन्ध जोड़कर विचार (चिन्तन) करना चाहिए। इन अङ्गों के साथ प्रभु के उस-उस स्वरूप के सम्बन्ध को स्पष्टतः प्रतिपादित करना पृथक्शः संध्योपासना ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है, इस पञ्चयज्ञपरक 'नित्यकर्म विधि' का कलेवर इसकी अनुमति नहीं देता, अतः आत्म-निवेदन में दिये विचारों को चिन्तन क्रिया से विस्तृत कर आनन्द-लाभ लें।

आत्म-निवेदन—हे प्राणस्वरूप प्रभो!, आप हमारी बुद्धि को पवित्र कीजिए, हे दुःखनाशक देव! आप हमारी नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियों को पवित्र कीजिए, हे सुखस्वरूप स्वामिन्! आप हमारी कण्ठ आदि

---

१. अष्टाध्यायी २.३.३६ २. अष्टाध्यायी १.४.४५

तरद् द्वेषः सासहिः पौंस्येभिः। (ऋ० १.१००.३)
सहनशील पुरुषार्थियों से द्वेषियों को प्रभु दूर कर देता है।

(वाक्) कर्मेन्द्रियों को पवित्र कीजिए, हे महतो महान् भगवन्! आप हमारे हृदय (आत्मा) को उदार (महान्) कर पवित्र करो, हे सर्वोत्पादक प्रभो! आप हमारे नाभिस्थ जनन संस्थान को पवित्र कीजिए, हे दुरितदाहक अनन्त-पराक्रमी प्रभो! आप हमें बुरे चाल-चलन से बचाकर सन्मार्ग पर चलने की शक्ति प्रदान कर पैरों को पवित्र करो, हे सत्स्वरूप अविनाशी स्वामी! आप हमारे मस्तिष्क को, बुद्धि को स्वानुभूति से पुनः-पुनः यानि सतत युक्त कर पवित्र कीजिए, हे सर्वव्यापक, सबसे बड़े प्रभुवर! आप हमारे समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों को पवित्र कर दीजिए। आप परम पवित्र हो, कृपा कर हमें पूर्ण (सर्वाङ्ग) पवित्रता प्रदान कीजिए।

अथ प्राणायाममन्त्राः

शरीर को सीधा रख, दोनों हाथों की अधखुली-सी मुट्ठियों की पीठ घुटनों के ऊपर रखकर भीतर की वायु को बलपूर्वक बाहर निकालकर जितनी देर रोक सकें, बाहर ही रोके रक्खें, फिर धीरे-धीरे भीतर जाने दें और वहाँ भी कुछ देर रोकें। फिर बाहर निकालकर जितनी देर रोक सकें, रोकें। यह एक प्राणायाम हुआ। ऐसे-ऐसे कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक २१ प्राणायाम करें। वायु को रोककर नीचे लिखे मन्त्र का अर्थ-विचारपूर्वक चिन्तन करना चाहिए।

विशेष—प्राणायाम मन्त्रों में आये ईश्वर के मार्जन-प्रयुक्त स्वरूपों (विशेषणों) को प्राणायामपूर्वक विस्तृत चिन्तन के साथ अनुभव करें। प्रभु के जिस नाम का मन से उच्चारण करें उस स्वरूप को समस्त चिन्तन में व्याप्त कर लें।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः।

ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥ —तैत्ति० प्र० १.२७

प्रभु-कीर्तन

अर्थ—(**ओम्**) परमेश्वर (**भूः**) प्राणस्वरूप (**भुवः**) दुःख-नाशक (**स्वः**) सुखस्वरूप (**महः**) बड़ा (**जनः**) पिता (**तपः**) दण्डदाता, ज्ञानस्वरूप (**सत्यम्**) सत्यस्वरूप और अविनाशी है।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्तु। (ऋ० १.१००.१९)
विश्वनियन्ता इन्द्र सदा हमारा ज्ञानदाता-उपदेशक होवे।

नमो ओम् आनन्द शान्ति प्रदाता, नमो भूः प्राणों के हो प्राणदाता
नमो हे भुवः कष्ट हर लेनेहारे, नमः स्वः सुखी भक्त आश्रय तुम्हारे
नमो हे महः ब्रह्म आदित्यरूपम्, नमो हे जनः सृष्टिकर्त्ता अनूपम्
नमो हे तपः दुःखनाशक पिता हो, नमो सत्य सर्वज्ञ सबके सखा हो॥
सभी हम प्रभो! अब शरण आपकी हैं।
हुईं दूर बाधा, जो भव-ताप की हैं॥

द्रष्टव्य—प्राणायाम का अभ्यास क्रमशः यथाशक्ति बढ़ावें। बिना अभ्यास के एक साथ बहुत देर तक बलपूर्वक वायु रोकने अथवा बहुत देर तक प्राणायाम करने से हानि की सम्भावना है, परन्तु विधिपूर्वक, यथाशक्ति प्राणायाम करना बल-वीर्य की वृद्धि, पुरुषार्थ-पराक्रम, जितेन्द्रियता, बुद्धि की सूक्ष्मता एवं आत्मा की स्थिरता में अत्यन्त हितकर है, जैसे गोताखोर जल में डुबकी मारकर शुद्ध होकर बाहर आता है वैसे ही साधक भक्त प्राणायाम द्वारा अपने आत्मा को शुद्धज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध होता है।

अथ अघमर्षणमन्त्राः

तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर और सृष्टि-क्रम का विचार नीचे लिखे मन्त्रों से करें और जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सब जीवों के कर्मों का द्रष्टा—ऐसा निश्चित मानके पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने दे, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्त्तमान रक्खे—

विशेष—यह अघमर्षण प्रकरण ऋषि ने मन की पाप-भावनाओं को निर्मूल करने के निमित्त रक्खा है, जिसमें सृष्टि-रचना का वर्णन है। वेद कहता है—'**ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति**' ऋत् (सृष्टि-नियमों) का चिन्तन-मनन पाप-वासनाओं को नष्ट कर देता है। इस आत्म-निवेदन को इसी भावनानुसार रक्खा जा रहा है, हमारा सच्चा चिन्तन इसे सार्थक कर देगा।

ओ३म्। ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः॥ १॥

अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्। (ऋ० १.१००.१९)
हम कुटिलता-रहित होकर शक्ति को प्राप्त हों।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽअजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ३॥

—ऋ० १०.१९०.१-३

भाषार्थ—अब अघमर्षण, अर्थात् हे ईश्वर! तू जगदुत्पादक है, इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के, उपदेश के मन्त्र लिखते हैं—(**ओं ऋतं च सत्यमित्यादि**)। इनका अर्थ यह है कि—

(**धाता**) सब जगत् का धारण और पोषण करनेवाला और (**वशी**) सबको वश में करनेवाला परमेश्वर, (**यथापूर्वम्**) जैसा कि उसके सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी और जैसे जीवों के पुण्य-पाप थे, उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं। (**सूर्याचन्द्रमसौ**) जैसे पूर्व कल्प में सूर्य-चन्द्रलोक रचे थे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (**दिवम्**) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था, वैसा ही इस कल्प में रचा है तथा (**पृथिवीम्**) जैसी* प्रत्यक्ष दीखती है, (**अन्तरिक्षम्**) जैसा पृथिवी और सूर्यलोक के बीच में पोलापन है, (**स्वः**) जितने आकाश के बीच में लोक हैं, उनको (**अकल्पयत्**) ईश्वर ने रचा है। जैसे अनादिकाल से लोक-लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है, वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता, किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है, उसमें वृद्धि, क्षय और उलटापन कभी नहीं होता। इसी कारण से '**यथापूर्वम-कल्पयत्**' इस पद का ग्रहण किया है।

(**विश्वस्य मिषतः**) उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही (**विदधत्**) रचे हैं। इसमें कोई ऐसी शङ्का करे कि ईश्वर ने किस

---

* भूमि जो (सं०)

पितेव नः शृणुहि हूयमानः। (ऋ० १.१०४.९)
पुकारे जाने पर पिता की भाँति हमारी टेर सुनो।

वस्तु से जगत् को रचा है? उसका उत्तर यह है कि (**अभीद्धात् तपसः**) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित [होता] और सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के अधीन है। (**ऋतम्**) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या के खज़ाने वेदशास्त्र को प्रकाशित किया, जैसाकि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा। (**सत्यम्**) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त है, जिसके नाम अव्यक्त, अव्याकृत, सत्, प्रधान [और] प्रकृति हैं, जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है, सो भी (**अध्यजायत**) कार्यरूप होके पूर्वकल्प के समान उत्पन्न हुआ है। (**ततो रात्र्यजायत**) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हज़ार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है, सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है। इसमें ऋग्वेद का प्रमाण है कि—"जब जब विद्यमान सृष्टि होती है, उसके पूर्व सब आकाश अन्धकाररूप रहता है और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं, उसी का नाम महारात्रि है।" (**ततः समुद्रो अर्णवः**) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघ मण्डल* में जो महासमुद्र है, सो पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है।

(**समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत**) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर, अर्थात् क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है। वेद से लेके पृथिवीपर्यन्त जो यह जगत् है, सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है और ईश्वर सबको उत्पन्न करके, सबमें व्यापक होके अन्तर्यामिरूप से सबके पाप-पुण्यों को देखता हुआ, पक्षपात छोड़के सत्यन्याय से सबको यथावत् फल दे रहा है॥ १-३॥

ऐसा निश्चत जानके ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन, वचन और कर्म से पापकर्मों को कभी न करें। इसी का नाम अघमर्षण है, अर्थात् ईश्वर सबके अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है, इससे पापकर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें।

---

* अन्तरिक्ष में। सं०।

व्यूर्णोति हृदा मतिम्। (ऋ० १.१०५.१५)
विद्वान् हृदय से विशेष ज्ञान को निष्पन्न करता है।

ऋत सत्य से ही तूने संसार को बनाया।
तेरा ही दिव्य कौशल है सिन्धु ने लखाया॥
पहले के कल्प-जैसे रवि-चन्द्र को सजाया।
दिन-रात पक्ष संवत् में काल को सजाया॥
द्यौ-अन्तरिक्ष-धरणी सब नेम पर टिकाये।
तू रम रहा सभी में तुझमें सभी समाये॥

आत्म-निवेदन—हे प्रभो! आपने अपने ऋतरूप सत् ज्ञान के द्वारा सत्-रूप मूल प्रकृति को अपने अनन्त सामर्थ्य से यथायोग्य संयुक्त करके इस विश्व ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया है। इससे पूर्व यह रात्रिरूप प्रलय को प्राप्त था। उस प्रलय से पहले आपने इसे प्रत्येक द्रव्य के परमाणुरूप तरल महासमुद्र-जैसी अवस्था में बनाया। उसके बाद सौरमण्डलों के केन्द्र तथा दिन-रात आदि समय के आधार-भूत सूर्यादि को बनाया। इनको बनाकर आपने यूँ ही नहीं छोड़ दिया, इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक छोटे-बड़े पदार्थ को आपने अपनी अनन्त सामर्थ्य, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता एवं सर्वाधारस्वरूप से अपने वश में करके व्यवस्थित किया। परमाणु से लेकर विशालकाय ग्रह-उपग्रह, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्रादि कोई भी तो आपकी अटल व्यवस्था का उलङ्घन नहीं कर रहा। हे जगत्पिता! आपकी यह व्यवस्था अटल है, अपरिवर्तनीय है, शाश्वत है। आपने जैसी रचना अब वर्त्तमान सृष्टि की की है वैसी ही पूर्व सृष्टि की की थी तथा आगामी सृष्टि की रचना व सम्पूर्ण व्यवस्था भी वैसी ही होगी। हे मेरे स्वामिन्! आप कृपा कर हमें वह शक्ति व सामर्थ्य दो कि हम आपकी इस सम्पूर्ण व्यवस्था को भली-भाँति जानकर, आपके बनाये सृष्टि-नियमों का अनुकरण करते हुए, आपकी वेदाज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन करें। (इसपर सूक्ष्म चिन्तन करके इसे समय व सामर्थ्यानुसार बढ़ाया जा सकता है)।

अघमर्षण-विधि के पश्चात् यहाँ पुनः इस मन्त्र को एक बार बोलकर तीन बार आचमन करें—

ओ३म्। शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।
शँयोर॒भिस्र॑वन्तु नः॥ —यजुः० ३६.१२

सन्ध्या के आरम्भ में शिखा को बाँधते हुए, जो गायत्री मन्त्र

स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते। (ऋ० १.११०.१)
उपदेश के लिए सरस बुद्धि प्रशंसित होती है।

बोला था वहाँ से लेकर अब तक बोले गये मन्त्रों के अर्थों का इस समय अच्छी प्रकार मन से मनन करें, ईश्वर का ध्यान तथा उपासना करें।

अथ मनसापरिक्रमामन्त्राः

नीचे लिखे मन्त्रों से सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना करें। इन छह मन्त्रों से परम प्रभु ओम् की सत्ता को सब दिग्-दिगन्तरों में अनुभव करते हुए सम्पूर्ण विश्व के साथ द्वेष-भावना को नष्ट करके मैत्रीभाव स्थापित कर निर्भय, निःशङ्क, उत्साही, आनन्दित और पुरुषार्थी रहें।

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥

—अथर्व० का० ३, सू० २७, मन्त्र १

अर्थ—(**प्राची**) सामने की [आगे बढ़ने की] (**दिक्**) दिशा का (**अधिपतिः**) स्वामी [आदर्श] (**अग्निः**) प्रकाशस्वरूप ईश्वर है। (**असितः**) बन्धनरहित [होने का भाव] (**रक्षिता**) रक्षा करनेवाला है। (**आदित्याः**) सूर्य की किरणें, तेजस्वी आप्त विद्वान् (**इषवः**) बाणरूप [प्रेरक हैं]। (**तेभ्यः अधिपतिभ्यः नमो नमः**) उन सब गुणों के अधिपति आदर्शरूप प्रभु के गुणों को बारम्बार नमस्कार है। (**रक्षितृभ्यः नमः एभ्यः इषुभ्यः नमः अस्तु**) जो ईश्वर के गुण और रचे हुए पदार्थ जगत् की रक्षा करनेवाले हैं और जो पापियों को बाणों के समान पीड़ा देनेवाले हैं, [रक्षकभाव तथा प्रेरक आप्तजन] उनको हमारा नमस्कार हो। (**योऽस्मान् द्वेष्टि**) जो प्राणी अज्ञान से हमसे द्वेष करता है [तथा] (**यं वयं द्विष्मः**) जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष अथवा पापी पुरुष से हम द्वेष करते हैं। (**तम्**) इन दोनों प्रकार की द्वेष-भावनाओं को (**वः**) तुम्हारी (**जम्भे**) दाढ़ में (**दध्मः**) रखते हैं, जिससे किसी से हम लोग वैर न करें और कोई भी प्राणी हमसे वैर न करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर मित्रभाव से वर्तें॥ १॥

तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे। (ऋ० १.१३५.१)
हे देव! कर्मफल प्राप्ति के लिए विद्वान् तेरे प्रति समर्पण करते हैं।

हे ज्ञानमय प्रकाशक! बन्धन-विहीन प्यारा।
प्राची में रम रहा है, रक्षक पिता हमारा॥
रवि-रश्मियों से जीवन पोषण-विकास पाता।
अज्ञान-अन्धकार में भी तू ही प्रभा दिखाता॥
हम बार-बार भगवन्! करते तुम्हें नमस्ते।
जो द्वेष हो परस्पर वह तेरे न्याय-हस्ते॥

आत्म-निवेदन—हे प्रियतम प्रभो! आत्म-कल्याण की दिशा में बढ़ते हुए मैं आपको अग्निरूप में अपने मार्गदर्शन के लिए पुकारता हूँ। हे देव! आप तो अविद्यादि बन्धनों से रहित हो और मैं इनसे ग्रस्त हूँ। आपसे मेरी प्रार्थना है कि हे पितः! आप मुझे आदित्य-(४८ वर्ष का अखण्ड ब्रह्मचर्य-पालन) पथ पर ले-चलो। इस पथ पर चलकर ही आत्मिक विकास और आत्म-कल्याण की प्राप्ति सम्भव है। हे स्वामिन्! आपके अग्निस्वरूप (अधिपति वा मार्गदर्शक) को नमन, तमादि दोषरहित स्वरूप को नमन तथा आदित्य-पथ हेतु सर्वात्मना समर्पण। हे सर्वसखे! अज्ञानतावश जो कोई हमसे द्वेष करता है या हम किसी से द्वेष रखते हों तो हे न्यायकारिन्! हम इन द्वेषभावों को आपकी न्यायरूपी दाढ़ में रखते हैं। आप कृपा कर हमें द्वेषादि के स्थान पर प्रेम व सहृदयता प्रदान करें, ताकि हम परस्पर मित्रभाव से रहें।

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ २॥

अर्थ—(**दक्षिणा**) दाहिनी ओर [ऐश्वर्य समृद्धि की] (**दिक्**) दिशा का (**अधिपतिः**) स्वामी [आदर्श] (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यशाली प्रभु है। (**तिरश्चिराजी**) टेढ़े चलनेवाले कीट-पतङ्ग आदि प्राणियों की पङ्क्ति से [कुटिल मार्गों, अपवित्र साधनों से बचने का भाव] रक्षा करनेवाला है। (**पितरः इषवः**) ज्ञानी लोग बाण के समान [प्रेरक, मार्गदर्शक] हैं। शेष अर्थ पूर्ववत्॥ २॥

तू इन्द्ररूप भगवन्! दक्षिण में भी दिखाता।
जड़ जीव-जन्तुओं से तू ही हमें बचाता॥

अघृणे न ते सख्यमपह्नुवे। (ऋ० १.१३८.४)
हे प्रभो! तेरी मित्रता से इन्कार नहीं करता।

वैदिक-सुधा पिलाता तू ज्ञानियों के द्वारा।
तुझसे लगन लगी है सर्वस्व तू हमारा॥
हम बार-बार स्वामिन्! करते तुम्हें नमस्ते।
जो द्वेष हो परस्पर वह तेरे न्याय-हस्ते॥

आत्म-निवेदन—बल, पराक्रम, ऐश्वर्य की दिशा (अवस्था) में बढ़ते हुए हम आपके इन्द्रस्वरूप को अपना अधिपति-मार्गदर्शक स्वीकारते हैं। हे देव! आप तो परमैश्वर्यशाली हैं, आपके इसी आदर्श का अनुकरण करते हुए कुटिल मार्गों व अपवित्र साधनोपायों को त्यागते हुए ऐश्वर्य के लिए टेढ़ी चाल न चलें, किसी का शोषण न करें। इस निमित्त हम पितरों, पालकों के पथ का अनुकरण करें। हमारा बल, पराक्रम व ऐश्वर्य प्राणियों के पालन व रक्षणार्थ हो। हे देव! आपके इन्द्रस्वरूप को नमन, कुपथगामी होने से बचाने के लिए आपको नमन। पितर-पथ पर गतिशील होने के लिए सर्वात्मना समर्पण। शेष पूर्ववत्।

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ३॥

अर्थ—(**प्रतीची**) पश्चिम या पृष्ठभाग [अन्धकार] की (**दिक्**) दिशा का (**अधिपतिः**) स्वामी [मार्गदर्शक] (**वरुणः**) सर्वश्रेष्ठ ईश्वर है। (**पृदाकुः**) सर्पादि विषधारी प्राणियों से [विषयों में विष का भाव] रक्षा करनेवाला है। (**अन्नम्**) पृथिव्यादि पदार्थ, तपोनिष्ठ महात्मा बाण के समान [मार्गदर्शक] हैं। शेष अर्थ पूर्ववत्॥ ३॥

पश्चिम में वास तेरा तू ही वरुण कहाता।
विषधारियों के भय से, हमको सदा बचाता॥
सब प्राणियों का पोषण, करता है अन्न द्वारा।
दुःख में तुही है साथी, सुख में तुही सहारा॥
हम बार-बार भगवन्! करते तुम्हें नमस्ते।
जो द्वेष हो परस्पर वह तेरे न्याय-हस्ते॥

आत्म-निवेदन—हे सर्वनियन्ता स्वामिन्! सम्भव है आपका

गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति। (ऋ० १.१४१.३)
ज्ञानी साधक हृदय-गुफा में पड़े हुए को मथ लेता है।

यह पुत्र अल्पज्ञता व अज्ञानता के कारण विपरीत दिशा को—उल्टे मार्ग पर चल निकले। ऐसी अवस्था में आपका वरुणस्वरूप जो पापियों को दण्डरूप बन्धन में डाल देता है, वह हमारा सहायक होगा। विपरीत दिशा में जाने का तो परिणाम भी विपरीत ही होगा न पितः! आत्मिक विकासरूप योग-पथ को छोड़ भोग की ओर चलना। विषयों का भोग तो विषवत् है ही। यह इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देता है। इसलिए हे पितः! तपोनिष्ठ योगियों का मार्ग ही हमारे लिए श्रेष्ठ है। उल्टे पथ पर तो आप वरुणरूप में पाश लिये बैठे हो। ऐसे वरुणरूप को हम नमन करते हैं, विषयादि से रक्षा करने के लिए आपको हमारा नमन और तपः मार्ग, कर्त्तव्यपालन करनेवाले पथ पर चलने हेतु समर्पण। शेष पूर्ववत्।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ४॥

अर्थ—(**उदीची**) उत्तर या बाईं ओर [शान्ति] की (**दिक्**) दिशा का (**अधिपतिः**) स्वामी [आदर्श] (**सोम**) शान्तस्वरूप ईश्वर है। (**स्वजः**) स्वयं उत्पन्न कीटादि से [शान्ति आत्मा में है, बाहर नहीं, यह भाव] (**रक्षिता**) रक्षा करनेवाला है। (**अशनिः**) बिजली [आत्मदर्शी] बाणरूप [प्रेरक] हैं। शेष अर्थ पूर्ववत्॥ ४॥

हे सोमरूप स्वामी! उत्तर दिशा निहारा।
तेरी उपासना है, भव-सिन्धु में सहारा॥
विद्युत् बनाके तूने, भूलोक जगमगाया।
जीवों में उसकी सत्ता सञ्चार कर सजाया॥
हम बार-बार भगवन्! करते तुम्हें नमस्ते।
जो द्वेष हों परस्पर वह तेरे न्याय-हस्ते॥

आत्म-निवेदन—यह दक्षिण (बल, पराक्रम, उत्साह व ऐश्वर्य) की विपरीत अवस्था है। जब निर्बलता, निरुत्साह एवं निराशा की अवस्था जीवन में आ जाए तो हे पितः! मैं आपके सोमस्वरूप को पुकारता हूँ। आपका सोमस्वरूप ही मेरा आश्रय होगा। सोमपान करके ही मैं इस अवस्था का सामना कर सकूँगा। हे मेरे स्वामिन्!

दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः। (ऋ० १.१४७.३)
दबानेवाले शत्रु उपासक को नहीं दबा सकते।

अल्पज्ञता एवं अल्पशक्ति तो मेरे स्वभाव में ही है न, इससे मेरी रक्षा कैसे हो? ऐसे में आत्मिक-ज्ञान, अपनी आत्मशक्तियों से परिचय ही ऐसा कार्य (पथ) है, जिससे ये निराशा के घने बादल विदीर्ण हो सकते हैं। जैसे बादलों को चीरकर बिजली चमक उठती है, वैसे ही अवसाद या निराशा की तमिस्रा को चीरकर आत्म-साक्षात्कार करना मुझे अभीष्ट है। शक्ति व विवेकदाता आपके सोमस्वरूप को नमन, स्वाभाविक स्वल्पताजन्य न्यूनता से रक्षार्थ नमन और आत्म-साक्षात्कार के पथ पर सर्वात्मना समर्पण। शेष पूर्ववत्

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ५॥

—अथर्व० ३.२७.५

अर्थ—(**ध्रुवा**) नीचे [दृढ़ता की] (**दिक्**) दिशा का (**अधिपतिः**) स्वामी [आदर्श] (**विष्णुः**) सर्वव्यापक ईश्वर है। (**कल्माषग्रीवः**) काली ग्रीवावाले प्राणियों से [कर्त्तव्य में प्रतिष्ठित होने का भाव] (**रक्षिता**) रक्षा करनेवाला है। (**वीरुधः**) वृक्ष-लतादि [नीचे से ऊपर उठनेवाले पुरुष] (**इषवः**) बाणरूप [प्रेरक] हैं॥ ५॥

हे विष्णु सर्वव्यापी! दृढ़ता हमें सिखाओ।
कर्त्तव्य में निरत रह, हँसना हमें बताओ॥
रक्षण तू कर रहा है, सन्तानवत् हमारा।
दुःख-सुख सभी समय में साथी सखा हमारा॥
हम बार-बार भगवन्! करते तुम्हें नमस्ते।
जो द्वेष हो परस्पर, वह तेरे-न्याय हस्ते॥

आत्म-निवेदन—हे सर्वव्यापक, सर्वपालक प्रभो! दृढ़ता व एकनिष्ठा के लिए मैं आपके विष्णुस्वरूप का आह्वान करता हूँ। आप सर्वव्यापक होकर सबका सब भाँति पालन करते हैं। शक्तिशः पुरुषार्थ करनेवाले की इच्छाओं की जब आप ही सब भाँति पूर्ति कर देते हो पुनः मैं अयुक्त, वेदविरुद्ध पापकर्म क्यों करूँ? स्वामिन्! हमारी आवश्यकता-पूर्ति तो आप विष्णुस्वरूप से कर ही रहे हैं,

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु। (ऋ० १.१४७.४)
मन्त्र ही सर्वत्र गुरु है (वेद व विवेक से सब निर्णय लें)।

अनावश्यक-संग्रह निरर्थक है। अति संग्रह तो शोषण ही है न, मैं यह पाप न करूँगा। मुझे तो परोपकार करना है, इसलिए मुझे तो पुरुषार्थपूर्वक आपसे जो मिल जाता है उसका भी अंशमात्र ग्रहण करके शेष सब प्राणी-समुदाय के हितार्थ समर्पित कर देना है। हे देवाधिदेव सर्वपालक! आपके विष्णुस्वरूप को नमन, अतिसंग्रह, अति भोगरूप शोषण से रक्षा करने हेतु नमन और समाजसेवा के पथ पर सर्वात्मना समर्पण। शेष पूर्ववत्

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ६॥

—अथर्व० ३.२७.६

अर्थ—(**ऊर्ध्वा**) ऊपर की (**दिक्**) दिशा का (**अधिपतिः**) स्वामी (**बृहस्पतिः**) महान् ईश्वर है। (**श्वित्रः**) रोगों से [गति और वृद्धि का भाव] (**रक्षिता**) रक्षा करनेवाला है। (**वर्षम्**) वर्षाजल [परोपकारी महात्मा] (**इषवः**) बाणरूप [प्रेरक] हैं। शेष अर्थ पूर्ववत्।

अन्तर-दृगों से भगवन्! ऊपर भी दृष्टि आते।
ऋतु सिद्ध वृष्टि होती, सब सृष्टि को चलाते॥
भौतिक विभूतियाँ हैं, तेरी प्रकट निशानी।
कैसे कहेगी वाणी, ऐसी अकथ कहानी॥
हम बार-बार प्रभुवर! करते तुझे नमस्ते।
जो द्वेष हो परस्पर वह तेरे न्याय-हस्ते॥

आत्म-निवेदन—आत्मिक विकास के सोपानों पर चढ़ते हुए उच्चतर स्तर को पाने के लिए मैं आपके बृहस्पतिस्वरूप को पुकारता हूँ, (बृहद्) बड़ा स्थान (बृहत्तम) सबसे बड़े की सहाय वा कृपा से मिल सकता है। आप बृहस्पति बड़े-बड़ों के भी स्वामी हो। प्रार्थनापूर्वक आपकी सहाय से प्राप्त उन्नति में निरभिमानता रहती है, अहङ्कार से बचाव हो जाता है। अहङ्कार एक ऐसी आग है जो अच्छाई से तो पैदा होती है तथा सतत अन्तस् को जलाती रहती है। हे महतो महान् देव! बड़प्पन की सार्थकता तो सभी प्राणिमात्र को

अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन। (ऋ० १.१५२.१)
ऋत के साथ प्रेम करके ही झूँठ से छुटकारा सम्भव है।

सुख देने में है। सांसारिक व्याधिग्रस्त, राग-द्वेष में जलती मानवता के लिए हमारा सान्निध्य ऐसी शीतलता दे जैसी तप्त भूमि को वर्षा से प्राप्त होती है। हे महेश्वर! आपको हमारा नमन, अहङ्कार की सतत जलती आग से बचाने के लिए नमन, शीतलता के पथ पर चलने हेतु सर्वात्मना समर्पण। शेष पूर्ववत्!

उपस्थानमन्त्राः

तत्पश्चात् परमात्मा का उपस्थान, अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अति निकट परमात्मा है, ऐसी बुद्धि करके करें—

ओं उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽउत्तरम्।
देवन्देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १॥ —यजुः० ३५.१४

अर्थ—(**वयम्**) हम सब (**उत्**) उत्कृष्ट (**तमसः परि**) अन्धकार से परे (**स्वः**) प्रकाशस्वरूप (**उत्तरम्**) प्रलय के पश्चात् भी विद्यमान रहनेवाले (**देवत्रा**) दिव्य गुणों से युक्त (**सूर्यम्**) चराचर के आत्मा (**देवम्**) ईश्वर को (**पश्यन्तः**) सर्वत्र देखते हुए, (**उत्तमम् ज्योतिः**) सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को (**अगन्म**) प्राप्त होवें।

रवि-रश्मि के रचैया! पावन प्रभा दिखा दो।
अज्ञान की तमिस्रा भूलोक से मिटा दो॥
देवों के देव! दिन-दिन हो दिव्य-दृष्टि प्यारी।
श्रुतिगान को न भूले रसना कभी हमारी॥

आत्म-निवेदन—हे ज्योतिस्वरूप भगवन्! आप कृपा करके हमें अज्ञानान्धकार से निकालकर अपने सुखस्वरूप को प्राप्त करने की सामर्थ्य प्रदान करें। हे देवों का त्राण, उद्धार करनेवाले देवाधिदेव! आप सूर्य से भी श्रेष्ठ प्रकाशवान् हो, इसलिए पितः! हम देवत्त्व को धारण करते हुए ज्ञानरूपी प्रकाश के परम स्रोत आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप कृपा कर हमें अज्ञानान्धकार से अवश्य पार कीजिए ताकि हम अपने को आपके सुखस्वरूप में स्थिर कर सकें।

उदु त्यञ्जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २॥ —यजुः० ३३.३१

अर्थ—(**उत् उ त्यम्**) निश्चय से उत्कृष्ट (**जातवेदसम्**) चारों वेदों के उत्पादक (**सूर्यम्**) ज्ञानस्वरूप (**देवम्**) ईश्वर को (**विश्वाय**)

न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्। (ऋ० १.७.७)
मैं प्रभु की स्तुति का पार नहीं पाता।

सबको (**दृशे**) दिखाने के लिए (**केतवः**) संसार के पदार्थ पताकारूप (**वहन्ति**) बने हुए हैं, अर्थात् जिस प्रकार पताकाएँ निर्दिष्ट स्थान का बोध कराती हैं, उसी प्रकार संसार के पदार्थ सूर्य-चन्द्र, नदी-पर्वत आदि अपने रचयिता परम प्रभु की प्रतीति कराते हैं।

इन बाह्य चक्षुओं से वह दृष्टि में न आया।
चाहा पता लगाना उसका पता न पाया॥
होकर निराश जब मैं घर लौट आ रहा था।
सृष्टि का ज़र्रा-ज़र्रा प्रभु-गान गा रहा था॥
दर्शन प्रभु के करके जब मन मेरा न माना।
भरकर खुशी में, उसने गाया नया तराना॥
जीवन में ज्योति, प्राणों में प्रेरणा तुम्हीं हो।
मन में मनन, बदन में नव-चेतना तुम्हीं हो॥

आत्म-निवेदन—हे सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी प्रभो! संसार के सब पदार्थ आपके ज्ञानस्वरूप का ध्वजा की भाँति निश्चित परिचय दे रहे हैं। ऐसे विलक्षण व विस्तृत संसार को आप सर्वज्ञ के बिना कौन बना सकता है? हे सर्वज्ञ स्वामिन्! आप कृपा कर हमें अपने दिव्य ज्ञान ज्योति से प्रकाशित स्वरूप से संयुक्त वा उसमें स्थित कीजिए।

चित्रन्देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ ३॥
—यजुः० ७.४२

अर्थ—ईश्वर (**देवानाम्**) देवों=भक्तों का (**चित्रम्**) विचित्र (**अनीकम्**) बल (**उद् अगात्**) है। वह (**मित्रस्य**) वायु (**वरुणस्य**) जल और (**अग्नेः**) अग्नि का (**चक्षुः**) प्रकाशक है (**द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं**) द्युलोक, भूमि तथा आकाश को (**आ प्रा**) धारण करता है (**च**) और वही (**जगत्**) चल तथा (**तस्थुषः**) अचल जगत् का (**सूर्यः**) उत्पादक (**आत्मा**) अन्तर्यामी है।

अद्भुत स्वरूप तेरा, तेरी अनूप करनी।
हैं आपमें अवस्थित द्यौ, अन्तरिक्ष, अवनी॥
तेरी कृपा से प्रभुवर! सच्चा प्रकाश पाया।
श्रद्धा की अञ्जली ले तेरे समीप आया॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा। (ऋ० १.३२.१५)
परमेश्वर चराचर का शासक है।

आत्म-निवेदन—हे सर्वशक्तिमन्, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ प्रभुवर! आप देवपुरुषों, धर्मात्माओं के बड़े विचित्र बल हो। हे स्वामिन्! जिसने आपसे मित्रता करके आपको वरण कर लिया है, एकमात्र आपका ही हो गया है, उसके लिए तो आप अग्नि के समान मार्गदर्शक हो। आप पृथिवी, आकाश और द्युलोक में पूर्णरूप से व्याप्त होकर चराचर जगत् के प्रकाशक, प्रेरक और आत्मा हो, अर्थात् सञ्चालक व नियामक हो। मैं ऐसे प्रभु के आश्रयभूत हुआ सर्वात्मना समर्पित होता हूँ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्॥ ४॥ —यजुः० ३६.२४

अर्थ—(**तत्**) वह ईश्वर (**चक्षुः**) सर्वद्रष्टा (**देवहितम्**) भक्तों का हितकारी (**शुक्रम्**) परम पवित्र है। वह (**पुरस्तात्**) सृष्टि के पूर्व से ही (**उच्चरत्**) वर्त्तमान है। उसकी कृपा से हम (**शतं शरदः पश्येम**) सौ वर्ष तक देखें। (**शतं शरदः जीवेम**) सौ वर्ष तक जीवें। (**शतं शरदः शृणुयाम**) सौ वर्ष तक सुनें (**शतं शरदः प्रब्रवाम**) सौ वर्ष तक बोलें। (**शतं शरदः अदीनाः स्याम**) सौ वर्ष तक स्वतन्त्र होकर रहें (**च**) और (**भूयः शरदः शतात्**) उसी परमेश्वर की कृपा से सौ वर्ष के उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें-सुनावें और स्वतन्त्र रहें।

जगदीश! यह विनय है, हम वीरवर कहावें।
होकर शतायु स्वामिन्! तुमसे लगन लगावें॥
सौ साल तक हमारी आँखें हों ज्योतिधारी।
कानों में शब्द सम्यक् सुनने की शक्ति सारी॥
वाणी विराट् प्रभु की विरुदावली सुनावे।
परतन्त्रता है पातक स्वातन्त्र्य मन्त्र गावे॥
सौ वर्ष से अधिक भी जीवित रहें सुखारी।
सर्वाङ्ग की क्रियाएँ स्थिर रहें हमारी॥

द्रष्टव्य—प्रेम में अति मग्न होकर अपनी आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़कर उक्त मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना करें।

यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम्। (अथर्व० ७.१८.२)
जहाँ परमेश्वर की ज्योति है, वहाँ कल्याण ही है।

आत्म-निवेदन—हे सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक प्रभुदेव! आपने साधकों, स्वभक्तों व उपासना करनेवालों के हितार्थ, उनकी आवश्यकता से पहले ही अपने पवित्र वेद-ज्ञान व शुद्धस्वरूप को उपस्थित, प्रकाशित कर दिया है। हे पितः! हम आपके उस पावन वेद-ज्ञान व शुद्धस्वरूप को सौ वर्षों तक देखते (साक्षात् करते) रहें, उसी वेद-ज्ञानानुसार आपको प्राप्त करने के लिए जिएँ, ऋचानुसारी आपके गुणानुवाद सुनते व बोलते रहें, इस प्रकार आपकी वेदाज्ञानुसार हम सौ वर्ष तक अदीन होकर जिएँ, सौ वर्ष ही क्यों शताधिक वर्ष भी हम इसी प्रकार जीवन-यापन करें। हे पितः! आप हमारी इस दिव्य अभिलाषा व प्रार्थना को अवश्य पूर्ण कीजिए।

तदनन्तर नीचे लिखे गायत्री (सावित्री व गुरुमन्त्र) का यथावकाश अर्थ-विचारपूर्वक मन से अधिकाधिक जप करें। गायत्रीमन्त्र का उच्चारण, उसका अर्थज्ञान और तदनुसार आचरण करें।

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ५॥ —यजुः० ३६.३

अर्थ—(**ओं**) यह प्रभु का मुख्य नाम है। वह (**भूः**) प्राणों का प्राण (**भुवः**) दुःखनाशक (**स्वः**) सुखस्वरूप है। (**तत्**) उस (**सवितुः**) सकल जगत् के उत्पादक (**देवस्य**) प्रभु के (**वरेण्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**भर्गः**) विशुद्ध तेज को हम (**धीमहि**) धारण करें। (**यः**) जो प्रभु (**नः**) हमारी (**धियः**) बुद्धियों को (**प्रचोदयात्**) सन्मार्ग में प्रेरित करे।

प्राण-प्रदाता सङ्कट-त्राता, हे सुखदाता ओम् ओम्।
सविता माता पिता वरेण्यं, भगवन् भ्राता ओम् ओम्॥
तेरा शुद्ध स्वरूप करें हम, धारण धाता ओम् ओम्।
प्रज्ञा प्रेरित कर सुकर्म में, विश्व विधाता ओम् ओम्॥

आत्म-निवेदन—हे सर्वरक्षक, प्राणस्वरूप, दुःखों का नाश कर, सर्वसुख प्रदाता परमेश्वर! आपने इस संसार को रचकर प्रकाशित किया है। हम आपके इस सवितास्वरूप का वरण (अनुकरण) करते हैं। आप पाप-ताप के नाश करनेवाले हैं। हे देव! हम आपके इस पापनाशक तेज को धारण करें। धारण किया हुआ यह तेज

स एष एक एकवृदेक एव। [अथर्व० १३.४(२).२०]
वह ईश्वर एक, सचमुच एक है।

हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर, सत्कर्मों में प्रेरित करे।

अथ समर्पणम्

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों के चिन्तन से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करें—

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयानेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

अर्थ—हे परमेश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जप और उपासना आदि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें।

आत्म-निवेदन—हे दया, कृपा, करुणा व वात्सल्य के अनन्तागार प्रभुदेव! आप ऐसी कृपा कीजिए कि हम आपकी जो स्तुति-प्रार्थना व उपासना कर रहे हैं, उसमें हम नितान्त तन्मय तल्लीन व एकाग्रमना हो सकें, हमारी यह प्रार्थनोपासना ऐसी सार्थक व प्रभावकारी हो जिससे हमारे धर्म (आत्मा के स्वाभाविक गुण) अर्थ (साधनास्वरूप आपसे प्राप्त दिव्य विभूतियाँ) काम (आपकी वेदाज्ञा का सश्रद्ध सतत पालन एवं आपको मिलने की इच्छा) मोक्ष (पूर्णतः आपके आनन्दस्वरूप को प्राप्त होना) आदि पुरुषार्थ चतुष्टय है, वह अविलम्ब सिद्ध हो।

अथ नमस्कारमन्त्रः

अन्त में निम्नलिखित मन्त्र द्वारा परम पिता परमात्मा को विनीतभाव से नमस्कार करें।

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥ —यजुः० १६.४१

अर्थ—(नमः शम्भवाय च) जो सुखस्वरूप, (मयः भवाय च) संसार के उत्तम सुखों का देनेवाला (नमः शंकराय च) कल्याण का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करनेवाला (मयस्कराय च) अपने भक्तों को सुख देनेवाला और धर्मकार्यों में युक्त करनेवाला (नमः शिवाय च शिवतराय च) अत्यन्त मंगलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को सुख देनेवाला है, उसको हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

मा श्रुतेन वि राधिषि। (अथर्व० १.१.४)
हम सुने हुए वेदोपदेश के विरुद्ध आचरण न करें।

हे मान्यवर महेश्वर! मंगल करो हमारा।
पावन प्रकाश पाएँ परमार्थ पुण्य द्वारा॥
हे शान्तस्वरूप स्वामी! मन शान्त हो हमारा।
बहती रहे हृदय में, अविरल सुज्ञान धारा॥
फिर अन्त में पिताजी! तुमको नमन करें हम।
वेदों के ज्ञान द्वारा जीवन सफल करें हम॥

आत्म-निवेदन—हे मोक्ष आनन्दस्वरूप! हे सुखस्वरूप प्रभो! आपको हमारा बारम्बार नमन। हे सबका कल्याण करनेवाले मोक्ष आनन्द के दाता, हे समस्त सांसारिक सुखों के रचने व देनेवाले प्रभो! आपको हमारा बारम्बार नमन। हे कल्याणप्रद! अतिशय कल्याण के देनेवाले प्रभुदेव! आपको हम सम्पूर्ण शक्ति से, सर्वतोभावेन, सर्वात्मना समर्पित होकर बार-बार नमन करते हैं, आप हमारे नमन को स्वीकार कीजिए।

शमित्योम्

देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्। (ऋ० १.१३९.११)
विद्वान्! इस यज्ञ का प्रेमपूर्वक सेवन करें।

देवयज्ञ : अग्निहोत्र

अर्थ व आवश्यक निर्देश (ऋषि की दृष्टि में)

अर्थ—१. 'यज्ञ' उसको कहते हैं जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प, अर्थात् रसायन जोकि पदार्थविद्या, उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र आदि जिनसे वायु, वृष्टि-जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ।

२. **अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं यस्मिन् कर्मणि क्रियते तदग्निहोत्रम्**—अग्नि वा परमेश्वर के लिए जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञापालन करने के अर्थ होत्र जो हवन, अर्थात् दान करते हैं, उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

समय—सायं-प्रातः—सूर्यास्त के पूर्व और सूर्योदय के पश्चात् अग्निहोत्र दो ही काल में करें।

अन्य विधान—१. स्त्री-पुरुष दोनों अग्निहोत्र, दोनों समय नित्य किया करें।

२. अग्निहोत्र के लिए सोना, चाँदी, तांबा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिए, जिसका परिमाण सोलह अङ्गुल गहरा और उसका तला चार अङ्गुल लम्बा-चौड़ा रहे। ऊपर भी एक-एक भुजा की लम्बाई १६-१६ अङ्गुल की होवे।

यज्ञपात्र—चमसा, घृतादि सामग्री रखने के पात्र सोना, चाँदी वा पलाशादि लकड़ी के बनवा लेने चाहिएँ। जल के पात्र तथा एक चिमटा भी रख लेवें।

४. यज्ञ का स्थान पवित्र देश व स्थल, जहाँ वायु शुद्ध हो; किसी प्रकार का उपद्रव न हो।

५. यज्ञसमिधा—पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की रहें, परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों।

६. छह-छह मासे (६ ग्राम) घृतादि एक-एक आहुति का

सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिम्। (ऋ० १.१३३.७)
यज्ञकर्त्ता परोपकारी को प्रभु बार-बार धन देता है।

परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए। अधिक-से-अधिक छटाँकभर (६० ग्राम) की आहुति देवे।

७. हवन सामग्री—केसर-कस्तूरी आदि सुगन्धित, घृत, दुग्ध आदि पुष्ट; गुड़-शर्करा आदि मिष्ट तथा सोमलतादि ओषधि रोगनाशक—ये चार प्रकार के पदार्थ हैं, इनका होम करें।

लाभ—१.यह मानवमात्र के लिए विधेय पञ्चमहायज्ञों में अन्यतम और श्रेष्ठतम कर्म है।

२. **कृतज्ञता**—'जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिए।'

३. **शुद्धि**—'सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग और रोग से प्राणियों को दुःख तथा सुगन्धित वायु और जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।'

यज्ञ से पञ्चभूत शुद्ध व सन्तुलित होकर पर्यावरण प्रदूषण दूर होकर तज्जन्य अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोप नहीं होते।

४. **वर्षा का नियन्त्रण**—'जो वायु सुगन्धादि द्रव्य के परमाणुओं से युक्त होम द्वारा आकाश में चढ़के वृष्टि-जल को शुद्ध कर देता और उससे वृष्टि भी अधिक होती है.....शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती हैं।'

५. **वेदों की रक्षा**—'जैसे हाथ से होम करते, आँख से देखते और त्वचा से स्पर्श करते हैं, वैसे ही वाणी से वेदमन्त्रों को भी पढ़ते हैं, क्योंकि उनके पढ़ने से वेदों की रक्षा, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है तथा होम से जो-जो फल होते हैं, उनका स्मरण भी होता है। वेदमन्त्रों के बारम्बार पाठ करने से वे कण्ठस्थ भी रहते हैं और ईश्वर का होना भी विदित होता है कि कोई नास्तिक न हो जाए।'

अन्य निर्देश—

१. यज्ञ के आसन, पात्र, वेदी आदि शुद्ध और पवित्र हों। कटे-फटे आसन, गन्दे और टूटे पात्र यज्ञवेदि पर नहीं होने चाहिएँ। आसन और पात्र आदि यज्ञ के अतिरिक्त अन्य किसी काम में न लिये जाएँ।

अपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः। (ऋ० १.१२५.७)
लोकोपकारहीन कञ्जूस को शोक घेर लेता है।

२. यज्ञ करने के लिए स्नान करके तथा धुले वस्त्र पहनकर बैठना चाहिए। अच्छा तो यह है कि वस्त्र श्वेत तथा बिना सिले हुए हों—नीचे एक धोती और ऊपर उत्तरीय। महिलाओं की वेशभूषा सादी रहे, वे साड़ी का प्रयोग करें, सिर ढककर बैठें। रजोदर्शन के चार दिन यज्ञ में भाग न लें।

३. **विचारणीय है**—जिन बच्चों अथवा बड़ों का भी यज्ञोपवीत न हुआ हो अथवा जिनके पास यज्ञोपवीत न हो वे आहुति न डालें। यज्ञ में उपस्थित अन्य सभी से आहुति डलवाना आवश्यक नहीं है।

४. यज्ञ में सामग्री की आहुति श्रद्धापूर्वक कुछ आगे झुककर समर्पितभाव से देनी चाहिए। सामग्री कुण्ड के बाहर इधर-उधर न बिखरे इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

५. यज्ञ के समस्त कार्य वाम हस्त से न कर दायें हाथ से ही सम्पन्न करने चाहिएँ।

६. आहुति 'स्वाहा' शब्द के उच्चारण के साथ ही दी जानी चाहिए आगे-पीछे नहीं।

७. सभी याज्ञिक एक स्वर तथा गति (मध्यम गति) से मन्त्रों का उच्चारण करें।

८. मन्त्रों को पूरा बोलकर ही तत्पश्चात् क्रिया करें आगे-पीछे नहीं। मौन आहुतियों में भी मन्त्र मन में पूरा बोलकर ही आहुति दें।

९. यज्ञ में एक निश्चित आसन (सुखासन) से ही बैठना चाहिए।

१०. मन्त्रपाठ के समय परस्पर वार्तालाप अथवा अन्य सभी ध्यान बँटानेवाले कार्य नहीं करने चाहिएँ, इस समय स्थिरचित्त और एकाग्रता बराबर बनाये रक्खें।

११. स्विष्टकृदाहुति घृत अथवा भात से ही दी जानी चाहिए, गुड़, चीनी आदि से नहीं।

१२. देवयज्ञ में बलिवैश्वदेव यज्ञ की आहुतियाँ देने का विधान नहीं है।

१३. यज्ञ करनेवाले सदा यज्ञोपवीतधारी तथा बद्धशिखा रहें।

१४. यज्ञ के दिनों में याज्ञिकों को ब्रह्मचारी तथा सात्त्विक आहारी होना चाहिए।

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते। (ऋ० १.१२५.६)
दक्षिणा देनेवाले मोक्षसुख पाते हैं।

१५. यज्ञशाला में हाथ-पैर धोकर सात्त्विक व आस्तिक बुद्धि से श्रद्धापूर्वक प्रवेश करना चाहिए।

१६. **मन्त्रोच्चारण**—सब संस्कारों में मधुर स्वर में मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यभाग जैसाकि जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे।

१७. **पुरोहित आदि का वरण**—अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल, निर्लोभी, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मतवाले वेदवित् एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करे। जो एक हो तो उसका (नाम) पुरोहित, दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित, तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष और चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा। होता—वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख रहकर घृताहुति दे। अध्वर्यु—वेदी के उत्तर में दक्षिणाभि-मुख—किसी प्रकार की हिंसा न होने दे। उद्गाता वेदी के पूर्व में पश्चिमाभिमुख यथासमय वामदेव का गान करे। ब्रह्मा—वेदी के दक्षिण में उत्तराभिमुख यज्ञकार्य पर कुशल दृष्टि रक्खे। यजमान—कुण्ड के पश्चिम में अथवा दक्षिण में रहकर ऋत्विजों का सत्कार और यज्ञकार्य करे।

सामान्य दैनिक यज्ञ

ऋत्विग्वरण

यजमानोक्तिः—ओम् आवसोः सदने सीद।

मैं परमेश्वर का स्मरण करते हुए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हमारे इस यज्ञासन पर कर्म की समाप्ति तक विराजमान हों।

इस मन्त्र का उच्चारण करके यजमान ऋत्विज से यज्ञकर्म-सम्पन्न कराने की प्रार्थना करे।

ऋत्विगुक्तिः—ओं सीदामि।

'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर ऋत्विज् जो उसके लिए आसन बिछाया हो उसपर बैठे।

यजमानोक्तिः—अहमद्य....—....कर्मकरणाय भवन्तं वृणे।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा। (ऋ० १.१२५.६)
संसार के विलक्षण पदार्थ दक्षिणा देनेवालों के लिए हैं।

मैं आज इस यज्ञकर्म करवाने के लिए आपका वरण करता हूँ।

ऋत्विगुक्तिः—वृतोऽस्मि।

'मुझे स्वीकार है'—ऐसा कहकर ऋत्विज् अपनी स्वीकृति प्रदान करे।

आचमनमन्त्राः

शान्तचित्त होकर शुद्ध आसन पर बैठें और दाईं हथेली में निर्मल जल लेकर इन तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें—

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥ १॥ इससे पहला

हे अमर परमेश्वर! आप सब जगत् का आधार हो। आपका यह जल हमारे लिए कल्याणकारी हो।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा॥ २॥ इससे दूसरा

हे अमर परमात्मन्! तू विश्व का धारक और पोषक है।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा॥ ३॥ इससे तीसरा

—तैत्ति० प्र० १०, अनु० ३२.३५

हे जगदीश! हमें सत्य-निष्ठा, सुयश, श्री, धनसम्पत्ति और ऐश्वर्य प्रदान करो।

अङ्ग-स्पर्श-मन्त्राः

बाईं हथेली में थोड़ा-सा जल लेकर दायें हाथ की मध्यमा और अनामिका अङ्गुलियों से नीचे दिये छह मन्त्रों से अङ्ग-स्पर्श तथा सातवें से मार्जन करें—

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु॥ १॥ इससे मुख का स्पर्श करें।

हे परमात्मन्! मेरे मुख में बोलने की शक्ति सदा बनी रहे।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु॥ २॥ इससे नाक के दोनों छिद्र छूएँ।

हे प्रभो! मेरे दोनों नथुनों में प्राण-शक्ति सदा बनी रहे।

ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु॥ ३॥ इससे दोनों आँखें स्पर्श करें।

हे जगदीश! मेरे दोनों नेत्रों में सदा पवित्र दृष्टि बनी रहे।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु॥ ४॥ इससे दोनों कान स्पर्श करें।

हे प्रभो! मेरे दोनों कानों में सुनने की शक्ति सदा बनी रहे।

> **यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।** (ऋ० १.१२५.५)
> जो प्राणियों को तृप्त करता है, वह देवलोक को जाता है।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु॥ ५॥ इससे दोनों भुजाओं को छूएँ।

हे ईश! मेरी दोनों भुजाओं में सदा बल बना रहे।

ओम् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु॥ ६॥ इससे दोनों जांघों को छूएँ।

हे परमेश! मेरी दोनों जङ्घाओं में सदा सामर्थ्य बना रहे।

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु॥ ७॥

इससे समस्त शरीर का मार्जन करें।

—पारस्करगृह० का० १, कण्डिका ३, सू० २५

हे देव! मेरे शरीर के सब अङ्ग स्वस्थ, सबल एवं संयमी हों और सम्पूर्ण शरीर का भरपूर विस्तार हो।

ईश्वर-स्तुति-प्रार्थनोपासनामन्त्राः

नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ अर्थ-सहित श्रद्धा और भक्ति से करें। संस्कारों, विशेष यज्ञों, साप्ताहिक सत्संगों, पारिवारिक सत्संगों में इन मन्त्रों का पाठ एक विद्वान् अथवा योग्य सज्जन अर्थ-सहित स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर करे और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें एवं विचारें—

ओ३म्। विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रन्तन्न आसुव॥ १॥ —यजुः० ३०.३

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे समस्त दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

तू सर्वेश सकल सुखदाता, शुद्धस्वरूप विधाता है,
उसके कष्ट नष्ट हो जाते, शरण तेरी जो आता है।
सारे दुर्गुण दुर्व्यसनों से, हमको नाथ बचा लीजे,
मङ्गलमय! गुण-कर्म-पदारथ प्रेम-सिन्धु हमको दीजे॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २॥

—यजुः० १३.४

अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः। (ऋ० १.३३.४)
यज्ञ न करनेवाले सनकी का नाश हो जाता है।

जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य, चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्त्तमान था, वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

तू ही स्वयं प्रकाश सुचेतन, सुखस्वरूप दुःखत्राता है,
सूर्य-चन्द्रलोकादिक को, तू रचता और टिकाता है।
पहले था, अब भी है तू ही, घट-घट में व्यापक स्वामी,
योग, भक्ति, तप द्वारा तुझको, पावें हम अन्तर्यामी॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥

—यजुः० २५.१३

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय, अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष-सुखदायक है, जिसका न मानना, अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति, अर्थात् उसी की आज्ञापालन करने में तत्पर रहें।

तू ही आत्मज्ञान बलदाता! सुयश विज्ञजन गाते हैं,
तेरी चरण-शरण में आकर, भवसागर तर जाते हैं।
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे बिसराने में,
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु, तुझसे लगन लगाने में।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽ इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥

—यजुः० २३.३

जो प्राणवाले और अप्राणिरूप जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि

देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन्। (ऋ० १.१५२.२)
देव-निन्दक ही पहले जीर्ण (दुर्बल) होते हैं।

प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ऐश्वर्य को देनेहारे परमात्मा के लिए अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके विशेष भक्ति करें।

तूने अपनी अनुपम माया से जग-ज्योति चमकाई है,
मनुज और पशुओं को रचकर, निज महिमा प्रगटाई है।
अपने हिय-सिंहासन पर श्रद्धा से तुझे बिठाते हैं,
भक्तिभाव से भेंटें लेकर शरण तुम्हारी आते हैं।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५॥

—यजुः० ३२.६

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाववाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया है, जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण किया और जिस ईश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त, अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

तारे, रवि-चन्द्रादिक रचकर निज प्रकाश चमकाया है,
धरणी को धारण कर तूने कौशल अलख जगाया है।
तू ही विश्व-विधाता, पोषक! तेरा ही हम ध्यान धरें,
शुद्ध भाव से भगवन्! तेरे भजनामृत का पान करें।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ६॥

—ऋ० १०.१२१.१०

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मन्! आपसे भिन्न दूसरा कोई उन, इन सब उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों का नहीं तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले होके हम लोग भक्ति करें, आपका आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, उस-उसकी कामना हमारी सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के

न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम्। (ऋ० १.१६६.२)
याज्ञिक को महाबली भी नहीं मार सकता।

स्वामी होवें।

तुझसे बड़ा न कोई जग में, सबमें तू ही समाया है,
जड़-चेतन सब तेरी रचना, तुझमें आश्रय पाया है।
हे सर्वोपरि विभो! विश्व का तूने साज सजाया है,
धन-दौलत भरपूर दीजिए, यही भक्त को भाया है।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ ७॥

—यजुः० ३२.१०

हे मनुष्यो! वह परमात्मा अपने लोगों का भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, वह सब कामों का पूर्ण करनेहारा, सम्पूर्ण लोकमात्र और नाम-स्थान-जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षस्वरूप धारण करनेहारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें।

तू गुरु है, प्रजेश भी तू है, पाप-पुण्य-फलदाता है,
तू ही सखा बन्धु मम तू ही, तुझसे ही सब नाता है।
भक्तों को इस भव-बन्धन से तू ही मुक्त कराता है,
तू है अज, अद्वैत महाप्रभु! सर्वकाल का ज्ञाता है।

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम॥ ८॥

—यजुः० ४०.१६

हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अच्छे, धर्मयुक्त, आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइए और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

वर्चोधा यज्ञवाहसे। (ऋ० ३.८.३)
यज्ञ-निर्वाह के लिए तेज को धारण कर।

तू है स्वयं प्रकाश हे प्रभो! सबका सिरजनहार तुही,
रसना निशदिन रटे तुम्हीं को! मन में बसता सदा तुही।
कुटिल पाप से हमें बचाते रहना हरदम दयानिधान!
अपने भक्त जनों को भगवन्! दीजे यही विशद वरदान।

अथ स्वस्तिवाचनम्

सृष्टि रचयिता की स्तुति

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ १॥ —ऋ० १.१.१

पहले से जगत् को धारण करनेवाले, यज्ञ के प्रकाशक, प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, सुन्दर पदार्थों को देनेवाले, रमणीय रत्नादिकों का पोषण करनेवाले ज्ञानमय प्रभु की मैं (उपासक) स्तुति करता हूँ।

विश्व-विधाता के चरणों पर जीवन पुष्प चढ़ाऊँ।
जिसने यह ब्रह्माण्ड सँवारा, उसकी गाथा गाऊँ॥

पितृवत् सुखद

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ २॥ —ऋ० १.१.९

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! जैसे पुत्र के लिए पिता वैसे आप हमारे लिए उत्तम ज्ञान और सुख देनेवाले हैं। आप हम लोगों को कल्याण के साथ सदा युक्त करें।

जैसे सुत को शिक्षा देकर पिता सुजान बनाता है।
जगत्-पिता वैसे ही हमको ज्ञान-पियूष पिलाता है॥

कल्याण-कामना

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥ ३॥
—ऋ० ५.५१.११

हे परमेश्वर! अध्यापक और उपदेशक हमारा कल्याण करें। हे ऐश्वर्यरूप! आपका जल और वायु सुख का सम्पादन करें। अखण्डित

सजोषसो यज्ञमवन्तु देवाः। (ऋ० ३.८.८)
विद्वान् परस्पर प्रीतिपूर्वक यज्ञ की रक्षा करें।

प्रकाशवाली विद्युद्-विद्या हम लोगों का कल्याण करे। पुष्टिकारक अन्न-दुग्धादि पदार्थ तथा प्राणों को बल देनेवाले मेघादि हमें कल्याण देनेवाले हों। द्यौ तथा पृथिवी उत्तम विज्ञान से हमारे लिए कल्याणकारी हों।

विद्युत, पवन, मेघ, नभ, धरणी मोदमयी भयहारी।
विद्वानों की वाणी होवे, सुखद सर्व-हितकारी॥

प्रभु के पदार्थ व ज्ञानी सुखद हैं

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥ ४॥

—ऋ० ५.५१.१२

वायु को गति तथा चन्द्रमा को सोमरस देनेवाला सबसे महान् जगत् का स्वामी परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो। सब समूहवाले बड़े-बड़े ब्रह्माण्डों व वेदज्ञान के रक्षक परमात्मा की हम स्तुति करते हैं। हे प्रभो! बड़े विद्वान्, भक्त, शूरवीर, आदित्य ब्रह्मचारी पुत्र हमारे आनन्द के लिए हों।

जगत् पिता सबके स्वामी, सदा स्वस्ति कल्याण करें।
विविध रूप से ध्यान धरें हम, स्वस्ति सुमंगल गान करें॥

रुद्र पाप से छुड़ाए

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ ५॥

—ऋ० ५.५१.१३

आज सब विद्वान् लोग हमारे कल्याण के लिए हों। सब मनुष्यों में वर्त्तमान, सर्वव्यापक, ज्ञानस्वरूप परमात्मा हमारा कल्याण करे। मेधावी देवजन सुख के लिए हमारी रक्षा करें। दुष्टों को दण्ड देनेवाला प्रभु हमें पापों से सदा दूर रक्खे, जिससे हमारा कल्याण हो।

हे रुद्र! प्रभुदेव हमारे, हमारी सदा रक्षा करें।
पापकर्मों से बचें हम, स्वस्ति के पथ पर बढ़ें॥

देवा देवानामपि यन्ति पाथः। (ऋ० ३.८.९)
विद्वानों के मार्ग पर विद्वान् ही चलते हैं।

सब सुखद हों

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥ ६॥

—ऋ० ५.५१.१४

प्राण और उदान वायु हमारे लिए सुखकर हों, वायु और विद्युत् हमारा कल्याण करें, धनयुक्त बड़े मार्ग हमें सुख देनेवाले हों। ज्ञानमय अखण्डित परमेश हमारा सदा कल्याण करे।

प्राण-अपान सदा सुख देवें विद्युत् भद्र बन जावें।
'ओ३म्' परमेश कृपा कर जीवन में उल्लास बढ़ावें॥

सूर्य-चन्द्र का अनुकरण

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ ७॥ —ऋ० ५.५१.१५

हम सूर्य और चन्द्रमा की भाँति कल्याण-युक्त मार्ग पर चलते रहें। फिर दानी, अहिंसक, ज्ञानीजनों तथा परमात्मा से मेलकर हम सुख प्राप्त करें।

सूर्य-चन्द्र के स्वस्ति पथ पर हम प्रभु चलते रहें।
ज्ञानी दानी, बन अहिंसक सत्संग सदा करते रहें॥

याज्ञिक का यश

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ८॥

—ऋ० ७.३५.१५

पूजनीय विद्वान्, यज्ञमय जीवनवाले ज्ञानी, यशस्वी देवजन आज हमें उत्तम उपदेश करें। हे देवो! आप अनेक सुखों द्वारा सदा हमारी रक्षा करो।

यज्ञव्रती, विद्वान् सर्वदा कर्म-तत्त्व बतलावें।
अन्तस्तल में ज्योति जगाकर, श्रेय-मार्ग दिखलावें॥

यज्ञस्य प्राविता भव। (ऋ० ३.२१.३)
तू यज्ञ का रक्षक बन।

मधुर-मेघ

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्रसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥ ९॥

—ऋ० १०.६३.३

जिन विद्वानों के लिए प्रकाशवाली मेघ-सदृश दानशीलता, अखण्ड वेदविद्या वा पृथिवी माता अति मधुर अमृत और दुग्धादि देती हैं वे अत्यन्त बलवाले, श्रेष्ठों का पोषण करनेहारे, सुकर्मी, अखण्ड व्रतवाले, आदित्य ब्रह्मचारी हमारा मंगल करनेवाले हों।

वेद, धरती-माता, मेघ, मधुर अमृतरस प्रदान करें।
आदित्य ब्रह्मचारी, ज्ञानी, कर्मठजन सदा कल्याण करें॥

अमरत्व-प्राप्ति

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥ १०॥

—ऋ० १०.६३.४

मनुष्यमात्र के योगक्षेम पर दृष्टि रखनेवाले, सदा सावधान रहनेवाले, आदर के पात्र, बहुत बड़े विद्वान्जन अमरत्व को प्राप्त करते हैं। ज्ञान-मार्ग के पथिक, बुद्धि के धनी, निष्पाप प्रकाशवाले, उच्च स्थान में निवास करनेवाले हमारे लिए कल्याणकारी हों।

यश गूँजे द्युलोक में शक्ति सदा कल्याण करें।
अमरत्व को पाते सदा वे, पूजनीय महान् रहें॥

उपकारी विद्वान् का सम्मान

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥ ११॥

—ऋ० १०.६३.५

हे प्रभो! अपने तेज से भली प्रकार तेजस्वी, ज्ञानादि से वृद्ध जो विद्वज्जन यज्ञ-कर्म को प्राप्त होते हैं और जो सबसे अपीड़ित देवगण उच्च सम्मानित पद को प्राप्त करते हैं, उन गुणों से अधिक श्रेष्ठ ब्रह्मचारी विद्वानों को और आत्म-विद्या के पण्डितों को, आदर-सहित अन्न-पानादि से, सुन्दर मधुर वाणी से सम्मानित कर, प्राप्त करें

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूत्। (ऋ० ३.३२.१२)
हे जीव! यज्ञ ही तुझे बढ़ानेवाला है।

तथा कल्याण प्राप्त करें।

आदरभरी मधुर वाणी से, जी भरके सम्मान करें।
याज्ञिक, सुव्रती, ब्रह्मचारी, हमारा सदा कल्याण करें॥

यज्ञ का रखवाला

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥ १२॥
—ऋ० १०.६३.६

हे सब दिव्य गुणयुक्त विद्वानो! तुम जितने भी हो, उन सबकी स्तुति-उपासना जिसका तुम सेवन करते हो, प्रजापति परमेश्वर सिद्ध करता रहता है। वही सुखस्वरूप परमात्मा तुम अनेक जन्म धारण करनेवालों के हिंसारहित यज्ञ को पूर्ण करता है, जो यज्ञ-पाप को हटाकर हमारे लिए आनन्द को प्राप्त कराता है।

यज्ञों 'औ' गुण-स्तुतियों के, फल का वही प्रदाता है।
दुःखों का हर्त्ता प्रभु है, वह सबका स्वस्ति-विधाता है॥

जीवन-यज्ञ रचयिता को पुकारो

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥ १३॥
—ऋ० १०.६३.७

जिन विद्वानों के लिए अग्नि, सूर्य आदि तेज के प्रकाशक ज्ञानवान् परमेश्वर ने मन के साथ तथा सात यज्ञों को करनेवाली इन्द्रियाँ दी हैं। अभय योग्य, भजनीय परमैश्वर्यवान् परमात्मा का हम कल्याण के लिए आह्वान करते हैं।

जिसने अनल और मारुत, जल, भूविद्या फैलाई।
उसकी सुयश-पताका जग में गौरव से लहराई॥

विद्वान् पाप-ताप मिटावें

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥ १४॥
—ऋ० १०.६३.८

जो विद्वान्, मननशील मनुष्य संसार के सब स्थावर (घर, पर्वतादि

यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत्। (ऋ० ३.३२.१२)
यज्ञरूपी वज्र पाप-नाश में सफलता दिलाता है।

जड़) के और जंगम (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि गतिशील) पदार्थों के राजा हुए हैं, वे विद्वान्‌जन हमारे किये और न किये (शारीरिक और मानसिक) पापों से हटाकर आज हमारी रक्षा करें।

जड़-चेतन के ज्ञानी ऋषिगण, हमको शक्ति प्रदान करें।
किये-अन-किये पाप-कर्म से, आज हमारा उत्थान करें॥

उसे पुकारना सरल है

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये॥ १५॥

—ऋ० १०.६३.९

संग्रामों में परम ऐश्वर्यवाले, सहज में पुकारने योग्य, पाप से छुड़ानेहारे, सुकर्मी, विद्वज्जनों के हितकारी, समस्त संसार के उत्पादक, ज्ञानस्वरूप ईश्वर का हम सब सम्मान से, आत्म-रक्षा एवं कल्याण के लिए आह्वान करते हैं।

वेद-वचनों से हमारी ससम्मान स्तुति लीजिये।
आत्म-रक्षा हित ही हमारा सुमंगल कीजिये॥

वेद ज्ञान की नौका

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ १६॥

—ऋ० १०.६३.१०

सुरक्षा के सब साधनों से युक्त, विस्तृत ज्ञान देनेवाली, आनन्द-दात्री, पाप-विकार से रहित, अति सुन्दर ज्ञानवाली वेद-ज्ञानरूपी नौका पर हम विविध प्रकार के कल्याण के लिए आरूढ़ हों।

वेद-ज्ञान से जीवन अपना निर्मल स्वच्छ बनावें।
धर्म-डाँड से खेकर उसको लक्ष्य तीर पहुँचावें॥

विद्वान् का आदर-सत्कार

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥ १७॥

—ऋ० १०.६३.११

हे पूजनीय विद्वानो! आप हमारी रक्षा के लिए उपदेश कीजिए।

ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्। (अथर्व० १८.४.२)
यज्ञकर्त्ता उत्तम सुख को पाता है।

कुटिलतायुक्त दुर्गति से हमारी रक्षा कीजिए। हे विद्वान् लोगो! आप हमें भयरहित सुख देवो और हमारे सुन्दर पथ को आनन्द के लिए सुगम करो।

यज्ञादिक सत्कर्मों से विद्वान् सुमार्ग दर्शावें।
स्वयं अभय हो सुख बरसावें, सबको सुखी बनावें॥

विद्वानों का कर्त्तव्य

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥ १८॥

—ऋ० १०.६३.१२

हे विद्वानो! शरीर के बिगाड़नेवाले रोग के कीटाणुओं से हमारी रक्षा करो, सब प्रकार की नास्तिकता को, यज्ञ न करने की भावना को, दान न करने की प्रवृत्ति को, पाप करनेवाली दुर्भावना को, दुर्बुद्धि को, परस्पर कलह करनेवाली दुष्ट बुद्धि को हमसे दूर, बहुत दूर हटाओ, जिससे हम लोग विशाल सुख के साधनों को प्राप्त कर कल्याण के मार्ग पर चल सकें।

द्वेष पाप अशुभ कर्मों को दूर सदा हमसे धरें।
दान-यज्ञ शुभ-कर्म नित्य हमारे में भरें॥

विद्वानों का अनुकरण

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥ १९॥

—ऋ० १०.६३.१३

हे आदित्य ब्रह्मचारियो! विद्वानो! जिस मनुष्य को आप सुमार्ग से ले जाते हो, वह मनुष्य (समूह) किसी से पीड़ित न होता हुआ संसार में उन्नति करता है और धर्मपालन करता हुआ प्रजाओं, पुत्र-पौत्रादि से फूलता-फलता है।

आदित्य देवगण जन-जन को, सन्मार्ग पर सदा चलावें।
धर्मपालन कर प्रजासहित वे, आनन्द-मार्ग पर बढ़ जावें॥

अयज्ञियो हतवर्चा भवति। (अथर्व० १२.२.३७)
यज्ञ न करनेवाले का तेज नष्ट हो जाता है।

उषःकाल में योग-साधना

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये॥ २०॥

—ऋ० १०.६३.१४

हे विद्वज्जनो! आप अन्नादि की प्राप्ति में, वीर पुरुषों के करने योग्य संग्राम में, हितकर धन को प्राप्त करने में, कला-कौशल से रक्षा करते हो। वैसे ही ब्राह्ममुहूर्त से ही वायु के समान गतिशील रथ-यान पर चढ़कर हम परमैश्वर्य को प्राप्त करें।

जीवनरूपी रथ को पावनपथ पर सदा बढ़ावें।
जग के उपकारी कामों में बस आगे बढ़ते जावें॥

विद्वानों की शिक्षा में सर्वत्र सुख है

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥ २१॥

—ऋ० १०.६३.१५

हे गतिशील विद्वानो! हमें ऐसे सन्मार्ग पर चलाओ कि प्रभु-कृपा से हम जलवाले स्थलों व मरुस्थलों में, लाभदायक संग्रामों में, पुत्रों के कर्मों से युक्त अङ्गों में, भोज्य धनादि की प्राप्ति में सफलता-सुख प्राप्त करें।

सेना, सुत, जल, धेनु, धन-मार्ग सुगम बनाओ।
वातावरण विशुद्ध बनाकर वैर-विरोध मिटाओ॥

मातृभूमि रक्षा करे

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥ २२॥

—ऋ० १०.६३.१६

जो पृथिवी उत्तम गुणवाली, उत्तमोत्तम धन-धान्य से युक्त है, अच्छे मार्ग के लिए कल्याणकारी होती है, वही पृथिवी हमारे लिए, हमारे यज्ञ के लिए, हमारे सुन्दर निवास के लिए, घर में व वन में रक्षा करे तथा परमात्मा द्वारा रक्षित हमारा सदा कल्याण करती रहे।

यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। (अथर्व० ९.१०.१४)
यज्ञ विश्व-ब्रह्माण्ड का केन्द्र है।

गुणवती धन-धान्य सम्पन्न पृथिवी सदा कल्याण करे।
इस वीर मातृभूमि का मिलकर हम सब सम्मान करें॥

गौ अघ्न्या, रोगनाशक है

इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ २३॥ —यजुः० १.१

हे जगदीश्वर! हम अन्नादि इष्ट-पदार्थों के लिए तथा बलादि के लिए आपका आश्रय लेते हैं। हे वत्स जीवो! तुम वायु सदृश पराक्रमवाले बनो! सब जगत् का उत्पादक देव यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिए तुम सबको अच्छी प्रकार संयुक्त करे, तुम यज्ञ-कर्म द्वारा अपने ऐश्वर्य को आगे बढ़ाओ। यज्ञ सम्पादन के लिए न मारने योग्य बछड़ोंसहित गौएँ प्राप्त करो, जो यक्ष्मादि रोगों से शून्य हों। पापी, चोरी आदि दुर्गुणोंवाले तुम्हारी गौओं और भूमि के स्वामी न बनें। ऐसा यत्न करो, जिससे सुख देनेवाली पृथिवी और गौ आदि सज्जन पुरुषों के पास बढ़ती रहें। हे परमात्मन्! यज्ञकर्त्ता-धर्मात्मा पुरुष के दोपाये और चौपाये जीवों की तू रक्षा कर।

वही अन्नदाता, बलदाता वही पिता कहलाता।
गोरक्षा-यज्ञादि कर्म कर नर उसके ढिंग जाता॥

श्रेष्ठ विचार व कर्म दुःखनाशक हैं

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽ उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥ २४॥

—यजुः० २५.१४

हे ईश्वर! हमारे शुभविचार एवं शुभकर्म सब ओर से निर्विघ्न ऊपर उठते हुए चले जाएँ। सर्वोत्तम दुःखनाशक विद्वज्जन सर्वदा हमारी सभा में हमारी वृद्धि और रक्षा के लिए प्रतिदिन बने रहें।

शुभ कर्म संकल्प हों, सब भाँति सदा कल्याण हो।
विद्वज्जनों से ही सदा चहुँ दिश हमारा त्राण हो॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्। (ऋ० ८.२.१८)
यज्ञकर्त्ता को देवगण भी चाहते हैं।

विद्वानों की मति व गति पावें

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳪं रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाᳪं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥ २५॥

—यजुः० २५.१५

हे परमेश्वर! सरलता से आचरण करनेवाली, विद्वानों का मंगल करनेवाली, श्रेष्ठ बुद्धि हमें प्राप्त हो और विद्वानों के विद्यादि गुण हमें उपलब्ध हों, विद्वानों का मित्रभाव हमें सदा मिलता रहे, जिससे वे श्रेष्ठजन हमारी आयु को दीर्घकाल तक जीने के लिए बढ़ावें।

सरल देवगण से प्रतिभा पा हम अपना कल्याण करें।
उनके आदर्शों पर चल हम नव जीवन-निर्माण करें॥

जगत्पिता को पुकारो

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ २६॥

—यजुः० २५.१८

चर और अचर जगत् के स्वामी, बुद्धि को तृप्त करनेवाले परमात्मा को हम अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं, जिससे वह पोषक हमारे ज्ञान व धनों की बढ़ती और समृद्धि के लिए हमारी सदा रक्षा करे।

चर और अचर जगत्पति से हम निर्मल नेह लगावें।
शुद्ध हृदय से करें प्रार्थना, प्रभु शरण हो जावें॥

वह पुष्टिकर्त्ता, दुःखहर्त्ता है

स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ २७॥

—यजुः० २५.१९

बहुत सुननेवाला, बहुत कीर्तिवाला, परमैश्वर्यवान् प्रभु हमें कल्याण प्रदान करे। पुष्टिकर्त्ता-सर्वज्ञाता ईश्वर हमारे लिए कल्याण की वर्षा करे। तेजस्वी, दुःखहर्त्ता परमेश्वर हमें आनन्द देवे। बड़े-बड़े महान् पदार्थों का पति हमारे लिए कल्याणकारी हो।

यशस्वी ऐश्वर्यशाली! हमारा सदा कल्याण करे।
सर्वज्ञाता, पालक, रक्षक, आनन्दित हमें भगवान करे॥

देवान् यज्ञेन बोधय। (अथर्व० १९.६३.१)
देवों को यज्ञ से जागरूक बना।

इन्द्रिय व अङ्गों का सदुपयोग

भ॒द्रं कर्णे॑भिः शृणुयाम देवा भ॒द्रं प॑श्येमा॒क्षभि॑र्यजत्राः।
स्थि॒रैरङ्गै॑स्तुष्टु॒वाꣳस॑स्त॒नूभि॒र्व्य॑शेमहि दे॒वहि॑तं॒ यदायुः॥ २८॥

—यजुः० २५.२१

हे विद्वानो! कानों से हम शुभ सुनते रहें, हे पूज्य महात्माओ! आँखों से हम शुभ देखते रहें, दृढ़ अङ्गों और शरीरों से स्तुति करते हुए हम लोग विद्वानों का हितकारक जीवन अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

हे देव! कानों से सदा ही भद्र हम सुनते रहें।
भद्र आँखों से लखें, सुकर्म अङ्गों से सदा करते रहें॥

यज्ञादि शुभकर्म सफल करो

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ २९॥ —सा० पू० १.१.१

प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! चित्त की एकाग्रता के लिए, जीवन में गति देने के लिए, हमारे सब कार्यों में सद्गुण देने तथा सुपथ प्रदान करने के लिए तुम आओ। यज्ञादि शुभकर्मों द्वारा सदा हमारे हृदय में विराजो।

ज्योतिस्वरूप! मेरे अन्तर में दिव्य ज्योति फैलाओ।
कर्मयोग के तत्त्व सुझाकर नर-तन सफल बनाओ॥

श्रेष्ठ-कर्म-उपदेष्टा

त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳ हितः।
देवेभिर्मानुषे जने॥ ३०॥ —साम० पू० १.१.२

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप यज्ञादि श्रेष्ठकर्मों के दाता और उपदेष्टा हो, विद्वानों—उपासकों और विचारशील पुरुषों से भक्ति द्वारा हृदय में धारण किये जाते हो।

जग के सकल यज्ञ के होता सच्चिदानन्द कहलाते।
भक्तिभाव से तुमको भज नर भवसागर तर जाते॥

मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः। (अथर्व० ५.११.७)
लोग तुझे कञ्जूस न कहें।

हमें सामर्थ्य दो

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ ३१॥

—अथर्व० १.१.१

जो तीन गुण—सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण एवं पाँच महाभूत, पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक अन्तःकरण, जो चराचर आदि सबका धारक, सर्वव्यापक, सबका स्वामी है, वह परमेश्वर शरीर के बलों को आज मेरे लिए प्रदान करे।

सकल जगत् के धारक स्वामी! विनय मेरी स्वीकार करो।
मेरे अन्तःकरण, तन में बल शक्ति का आज संचार करो॥

अथ शान्तिकरणम्

विद्युत्, अग्नि, ओषधियाँ सुखद हों

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥ १॥

—ऋ० ७.३५.१

हे ईश्वर! विद्युत् और अग्नि रक्षणादि के द्वारा हमारे लिए सुखकारक हों, ग्रहण करने योग्य वस्तुओं के देनेहारे, बिजली और जल हमें सुखकारी हों, विद्युत् और ओषधिगण ऐश्वर्य के लिए रोगों के नाशक और भयों के निवर्त्तक हों, बिजली और वायु हमें सुखदायी हों।

विद्युत्, अग्नि, पवन, जल सारे, सुख सौभाग्य बढ़ावें।
रोग-शोक-भय-त्रास पास हमारे कभी न आवें॥

ईश्वर व सब पदार्थ सुखद हों

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥ २॥

—ऋ० ७.३५.२

हमारे लिए ऐश्वर्य सुखकारी हो और हमें हमारी प्रशंसा सुखदायक

अतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्। (यजुः० १.२३)
यजमान की सन्तान ग्लानिरहित हो।

हो, धारण करनेहारी हमारी बुद्धि शान्तिदायक हो और धनैश्वर्य हमें शान्ति देनेवाले हों, अच्छे नियमों से युक्त सत्य-कथन हमें सुखकारक हों, श्रेष्ठों का मान करनेहारा, बहुत प्रसिद्ध हमारा न्यायकारी भगवान् हमारे लिए कल्याणकारक हो।

सत्य, धन, ऐश्वर्य, सुबुद्धि सदा शान्ति बढ़ावें।
प्रभु के पद-पंकज पर श्रद्धा के हम पुष्प चढ़ावें॥

भू-अन्नादि शान्तिप्रद हों

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥ ३॥

—ऋ० ७.३५.३

सबका पोषण तथा धारण करनेहारा परमात्मा हमारे लिए शान्तिदायक हो, पृथिवी अमृतमय अन्नादि पदार्थों के साथ हमें शान्ति देनेवाली हो, विस्तृत अन्तरिक्ष एवं भूमि हमारे लिए शान्तिकारक हो, मेघ व पर्वत हमें शान्ति देनेवाले हों और देवों-विद्वानों के सुन्दर स्तुतिगान हमारे लिए शान्तिदायक हों।

सबका पोषक-धारक ईश्वर सदा शान्ति बरसावै।
भूमि, पर्वत, मेघ, देव, सदा सुख-शान्ति बरसावें॥

अहर्निश, सूर्य-चन्द्र शान्तिदाता हों

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥ ४॥

—ऋ० ७.३५.४

ज्योतियों की ज्योति ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हमारे लिए शान्तिदायक हो, दिन और रात हमें शान्तिकारक हों, सूर्य और चन्द्रमा हमें शान्ति देनेवाले हों, धर्मात्माओं के सुकर्म हमें शान्तिकारक हों, गतिशील पवन हमारे लिए सब ओर से शान्ति देनेवाली हो।

हे ईश! पवन, चन्द्र, रवि हमारे दुःख-सन्ताप मिटावें।
दिवस प्रमोदपूर्ण, रजनी भी सुख-सौन्दर्य बढ़ावें॥

उच्च तिष्ठ महते सौभगाय। (यजुः० २७।२)
महान् सौभाग्य के लिए पुरुषार्थ कर।

त्रिलोक शान्ति दें

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥ ५॥

—ऋ० ७.३५.५

पहले स्तुति किए हुए द्युलोक और पृथिवीलोक हमारे लिए शान्तिदायक हों, सूर्य-चन्द्रमावाला अन्तरिक्ष हमारी नेत्र-ज्योति के लिए शान्ति देनेवाला हो, ओषधियाँ-अन्नादि और वन्य-पदार्थ हमें शान्तिकारक हों, जगत् का स्वामी जयशील परमेश्वर हमें सदा शान्तिदायक हो।

द्यौ, धरणी, रवि, चन्द्र सत्कर्म में सुखदायक बन जावें।
अन्न-ओषधि-वनस्पति से हम सदा सम्यक् लाभ उठावें॥

सूर्य-क्रियाएँ सुखद हों

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु॥ ६॥

—ऋ० ७.३५.६

दिव्य गुणयुक्त सूर्य हमें सुखदायक हो, उत्तम गुणवाला जल सूर्य की किरणों के साथ हमें सुखदायी हो, जीवों की अभिलाषा पूरी करनेहारा, ज्ञानदाता परमेश्वर दुष्टों को दण्ड देनेवाले गुणों के साथ हमारे लिए सुखकर हो, विश्वकर्मा जगदीश हमारी प्रार्थना द्वारा ही शान्तिदायक हो।

निर्मल नीर नीरोगी होवें, भानु सुख बरसावें।
विश्वकर्मा की ज्ञान-गंगा में गोता सदा लगावें॥

वेद व यज्ञ सुखदायी

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः॥ ७॥

—ऋ० ७.३५.७

परमैश्वर्यवान् ईश्वर हमें सुखदायक हो, वेद-ज्ञान हमें सुखकारी हो, यज्ञ-कुण्ड तथा भवनादि हमें सुखदायी हों, यज्ञ-स्तम्भ परिमाण

स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान्। (ऋ० ५.३.५)
प्रभु यज्ञकर्त्ता मनुष्य को देव बनाकर शक्तियुक्त कर देता है।

हमारे लिए सुख देनेवाले हों, ओषधियाँ हमें कल्याण देनेवाली हों तथा यज्ञ-वेदी हमें शान्तिदायक हो।

जगदीश का वेदज्ञान, ओषधियाँ सुख सदा बढ़ावें।
यज्ञकर्म से जग में मानव मनवांछित फल पावें॥

सूर्य व दिशाएँ सुखरूप हों

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥ ८॥

—ऋ० ७.३५.८

बहुत पदार्थों के दर्शन करानेवाला सूर्य हमारे लिए सुखदायी हो, चारों बड़ी दिशाएँ हमें सुखकारी हों, दृढ़ पर्वत हमें सुखदायक हों, नदियाँ व समुद्र हमारे लिए सुखरूप हों और जल व प्राण हमें सुखदायक हों।

जल, प्राण, पर्वत, दिशाएँ, रवि, रक्षक सब बन जावें।
वसुधा शान्त सुरम्य, समूचे जीव-जन्तु सुख पावें॥

अखण्डित व्रत

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ ९॥

—ऋ० ७.३५.९

नियमोंसहित अखण्ड धरती-माता हमारे लिए सुखदायी हो, शुभ विचारवाले शूरवीर व बड़े विद्वान् लोग हमें सुख देनेवाले हों, व्यापक परमेश्वर हमें सुखदायक हो, पुष्टिकारक तत्त्व व ब्रह्मचर्यादि व्यवहार हमें शान्ति देनेवाले हों, अन्तरिक्ष व जल हमें सुखकर हों और पवन सुख देनेवाली हो।

धरती-गगन, भानु-जल वायु नित उल्लास बढ़ावें।
विद्वानों के वचनामृत से धर्मतत्त्व पा जावें॥

ईश्वर की सुखवर्षा

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥ १०॥

—ऋ० ७.३५.१०

यजध्वं हविषा तना गिरा। (ऋ० २.२.१)
वाणी, धन और शरीर से परोपकार करो।

रक्षा करता हुआ सर्वोत्पादक, दिव्यगुणयुक्त परमेश्वर हमारे लिए सुखदायी हो, जगमगाती हुई प्रभात वेलाएँ हमें सुख देनेवाली हों, मेघ हमें व हमारी प्रजाओं के लिए सुखकर हों, जगद्रूपी खेत का स्वामी, सब सुखों को देनेवाला परमात्मा हमारे लिए शान्तिदायक हो।

सकल जगत् का स्रष्टा प्रभु ही हमारी रक्षा सदा करे।
सुप्रभात हो सुखकर, शान्ति-वर्षा मेघामृत करे॥

आत्मदर्शी-यज्ञकर्त्ता

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु। शम॑भि॒षाच॒ः शमु॑ राति॒षाच॒ः शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वा॒ः शं नो॒ अप्या॑ः॥ ११॥

—ऋ० ७.३५.११

दिव्य गुणयुक्त विद्वान् हमारे लिए सुखकारी हों, विद्या, ज्ञान-विज्ञानवाली वेदविद्या उत्तम क्रियाओंसहित हमें सुखदायक हो, यज्ञकर्त्ता और आत्मदर्शी जन हमें सुख देनेवाले हों, विद्या-धनादि का दान करनेवाले हमें सुखदायी हों, द्युलोक और पृथिवी के पदार्थ हमें सुखदायक हों, जल में पैदा होनेवाले पदार्थ हमें सुखकारी हों।

भू-नभ के सब पदार्थ मंगलदायक होवें।
विज्ञानी प्रकृति के सारे गूढ़ रहस्य बतावें॥

श्रेष्ठ बुद्धिवाला शिल्पी

शं न॑ः स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्त॒ः शमु॑ सन्तु॒ गाव॑ः। शं न॑ ऋ॒भव॑ः सु॒कृत॑ः सु॒हस्ता॒ः शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु॥ १२॥

—ऋ० ७.३५.१२

सत्य के पालन करनेहारे हमें सुखदायक हों, उत्तम घोड़े और गौएँ हमें सुखदायी हों, श्रेष्ठ बुद्धिवाले, बड़े-बड़े काम करनेवाले व हस्तक्रिया में चतुरजन हमारे लिए सुख देनेवाले हों, यज्ञादि उत्तमोत्तम कार्यों में रक्षक माता-पिता आदि पितर हमें सुखकारी हों।

सत्यवक्ता विद्वान्, गौ-घोड़े सदा कल्याण करें।
याज्ञिक मात-पिता भी हमको शान्ति-सुख का दान करें॥

मा प्र गाम पथो वयम्। (ऋ० १०.५७.१)
हम वैदिक मार्ग से पृथक् न हों।

वह प्रभु कैसा है?

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा॥ १३॥

—ऋ० ७.३५.१३

अजन्मा, एक डगवाला, प्रकाशमय भगवान् हमें शान्तिदायक हो, न मारनेवाला, सब मूलतत्त्वों का साधक हमें सुखमय हो, जलों का स्वामी परमेश हमें कल्याणकारी हो, प्रजाओं को न गिरानेहारा, पार लगानेहारा परमात्मा हमें शान्तिकारी हो, सबको छूनेवाला, विद्वानों का, दिव्य पदार्थों का रक्षक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो।

अजर अमर अभय अखिलेश्वर को हम ध्यावें।
उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकार को पलभर नहीं भुलावें॥

पुत्र-पशु सुखी हों

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥ १४॥

—यजुः० ३६.८

हे परमेश्वर! आप सारे जगत् के स्वामीरूप में प्रकाशमान हैं। आपकी कृपा से हमारे पुत्रादि, मनुष्यादि व दोपाये सुख प्राप्त करें तथा गौ आदि चौपाये कल्याण को प्राप्त हों।

सकल जगत् में फैल रही दिव्य ज्योति प्रभु की पावें।
दोपाये, चौपाये सदा ही सुख-शान्ति उसी की अपनावें॥

तेरा वैभव सुखद है

शन्नो वातः पवताꣳ शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु॥ १५॥

—यजुः० ३६.१०

हे परमेश्वर! पवन हमारे लिए सुखकारी चलें, सूर्य हमारे लिए सुखकारी तपे, अत्यन्त उत्तम गुणयुक्त विद्युद्रूप अग्नि हमारे लिए कल्याणकारी हो और मेघ हमारे लिए सब ओर से सुख की वर्षा करें।

पवन बहे विमल वसुधा पर, भानु रश्मि चमकावे।
समय-समय पर बरसे बादल, कभी अकाल न आवे॥

विश्वायुर्धेहि यजथाय देव। (ऋ० १०.७.१)
हे देव! हमें सम्पूर्ण आयु यज्ञ के लिए दो।

सर्वत्र-सुख

अहानि शम्भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्।
शन्नऽइन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽइन्द्रावरुणा रातहव्या।
शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥ १६॥

—यजुः० ३६.११

हे ईश्वर! दिन हमें सुखकारी हों, रातें शान्ति देनेवाली हों, विद्युत् व अग्नि रक्षण-सामग्रीसहित सुखकारक हों, विद्युत् व जल के ग्रहण करने योग्य सुख हमें शान्तिदायक हों, विद्युत् और पृथिवी हमारे लिए अन्नों के सेवनार्थ सुखदायी हों तथा विद्युत् और उत्तम ओषधियाँ रोगनाशक एवं भय-निवर्त्तक हों, ऐसी कृपा करो।

दिवस-निशा मंगलमय, विद्युत्, अनल लाभ पहुँचावें।
अन्न जलोषधि रोगनिवारक भू-माता से पावें॥

दोनों सुख दो

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभिस्रवन्तु नः॥ १७॥ —यजुः० ३६.१२

सबका प्रकाशक और सबको आनन्द देनेवाला सर्वव्यापक ईश्वर मनोवाञ्छित आनन्द, अर्थात् ऐहिक सुख-समृद्धि के लिए और पूर्णानन्द, अर्थात् मोक्षानन्द की प्राप्ति के लिए हमको कल्याणकारी हो, अर्थात् हमारा कल्याण करे। वही परमेश्वर हमपर सुख की सर्वदा, सब ओर से वृष्टि करे।

देवीस्वरूप ईश्वर! पूर्ण अभीष्ट कीजे।
यह नीर हो सुधामय कल्याणदान दीजे॥

शान्ति की याचना

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ १८॥

—यजुः० ३६.१७

हे जगदीश्वर! प्रकाशमान सूर्यादिलोक सुखदायक हों, दोनों लोकों के मध्य में स्थित आकाशादि सुखकारी हों, जल व प्राण

त्वमस्माकं तव स्मसि। (ऋ० ८.९२.३२)

प्रभो! तू हमारा है, हम तेरे हैं।

शान्ति देनेवाले हों, सब अन्न व ओषधि कल्याण करनेवाली हों, वनस्पतियाँ सुख देनेवाली हों, ईश्वर, वेदज्ञान व विद्वान् लोग सुखदायक हों और इनके अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ भी हमें शान्ति देनेवाले हों। हे शान्ति! तू मुझे सदा शान्तिदायक रहे।

द्यौ, अन्तरिक्ष, भूमि, जल, वनस्पति ओषधि रोग निवारे।
विश्वदेव की दिव्य दया से सुख शान्ति दें सारे के सारे॥

प्रभु-परायण हों

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्॥ १९॥

—यजुः० ३६.२४

वह ईश्वर सर्वद्रष्टा, भक्तों का हितकारी, परम पवित्र है। वह सृष्टि के पूर्व से ही वर्त्तमान है। उसकी कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें। सौ वर्ष तक जीवें। सौ वर्ष तक सुनें। सौ वर्ष तक बोलें। सौ वर्ष तक स्वतन्त्र होकर रहें और उसी परमेश्वर की कृपा से सौ वर्ष के उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें-सुनावें और स्वतन्त्र रहें।

जगदीश! यह विनय है, हम वीरवर कहावें।
होकर शतायु स्वामिन्! तुमसे लगन लगावें॥
सौ साल तक हमारी आँखें हों ज्योतिधारी।
कानों में शब्द सम्यक् सुनने की शक्ति सारी॥
वाणी विराट् प्रभु की विरुदावली सुनावें।
परतन्त्रता है पातक स्वातन्त्र्य मन्त्र गावें॥
सौ वर्ष से अधिक भी जीवित रहें सुखारी।
सर्वाङ्ग की क्रियाएँ स्थिर रहें हमारी॥

ज्योतियों की ज्योति

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २०॥

—यजुः० ३४.१

हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जो मेरा मन जाग्रदवस्था में

पिता माता सद्‌मिन्मानुषाणाम्। (ऋ० ६.१.५)
हे प्रभो! आप मनुष्यों के माता-पिता हो।

दूर-दूर भागता है, दिव्य गुणयुक्त रहता है, सोते हुए वही मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता और दूर-दूर जाने का व्यवहार करता है, प्रकाशकों का, ज्योतियों का एकमात्र प्रकाशक (ज्योति) मेरा वह मन अपने तथा दूसरे प्राणियों के लिए कल्याणकारी सङ्कल्पवाला हो, किसी का अहित करने की इच्छावाला कभी न हो।

प्रभो! जागते हुए सदा जो, दूर-दूर तक जाता है।
सोते में भी दिव्य शक्तिमय, कोसों दौड़ लगाता है॥
दूर-दूर वह जानेवाला, तेजों का भी तेज निधान।
नित्य युक्त शुभसंकल्पों से, वह मन मेरा हो भगवान्॥

यक्ष-मन के कार्य

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २१॥

—यजुः० ३४.३

हे परमेश्वर! जिससे कर्म करनेवाले, कर्मनिष्ठ, धैर्ययुक्त विद्वान् लोग, मन के विजेता, यज्ञ और युद्धादि में कर्मों को करते हैं। जो अपूर्व सामर्थ्यवाला, विलक्षण, अद्भुत, अत्यन्त पूजनीय, प्रजाओं के भीतर रहनेवाला है, वह मेरा मन धर्मकार्य करनेवाला हो, अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे।

जिसके द्वारा बुद्धिमान् सब, नाना करतब करते हैं।
सत्कर्मों को करें मनीषी, वीर युद्ध में बढ़ते हैं॥
पूजनीय अतिशय जिसका है, प्रजावर्ग में अद्भुत मान।
नित्य युक्त शुभसंकल्पों से, वह मन मेरा हो भगवान्॥

प्रज्ञान-मन

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २२॥

—यजुः० ३४.४

जो मन उत्कृष्ट ज्ञान का साधन और अन्यों को चेतानेवाला तथा धैर्ययुक्त वृत्तिवाला है, जो लोगों के भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है, जिसके बिना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता, वह

मय्येवास्तु मयि श्रुतम्। (अथर्व० १.१.२)
मेरा सुना हुआ ज्ञान मेरे में ही रहे।

मेरा मन गुणों की इच्छा करके दुर्गुणों से दूर रहे।

जिसमें धैर्य, शक्ति, चिन्तन तथा ज्ञान रहता भरपूर।
प्राणिमात्र में अमृतमय है, और प्रकाश का बहता पूर॥
जिसके बिना नहीं चलता है, निश्चय कोई कार्यविधान।
नित्य युक्त शुभसंकल्पों से, वह मन मेरा हो भगवान्॥

त्रिकाल-गामी

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २३॥

—यजुः० ३४.४

हे स्वामिन्! जिस मन से सब योगी जन इन सब भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् व्यवहारों को जानते हैं, जो नाशरहित, जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाकर सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है। जिस मन के द्वारा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि और आत्मा कल्याणकारी यज्ञ को बढ़ाते हैं, विस्तृत करते हैं, फैलाते हैं, वह मेरा मन योग-विज्ञानवाला होकर अविद्या आदि क्लेशों से पृथक् रहे।

अमर तत्त्व जो तीन काल का, भेद यथावत् पाता है।
बुद्धि, ज्ञान की पाँच इन्द्रियाँ, अहंकार से नाता है॥
सात हवन करनेवालों का, जिसमें फैला यज्ञ-विज्ञान।
नित्य युक्त शुभसंकल्पों से, वह मन मेरा हो भगवान्॥

जिसमें वेद अरे हैं

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २४॥

—यजुः० ३४.५

हे परमदेव परमात्मन्! आपकी कृपा से जिस मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरे में अरे लगे होते हैं, वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इनके अन्तर्गत होने से अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित है, जिसमें सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, प्रजा का साक्षी चेतन परमात्मा विदित होता है, वह मेरा मन अविद्या को त्यागकर सदा विद्या-प्रिय बना रहे।

चार वेद निगमागम सारे, ईश ज्ञान के सुन्दर स्रोत।
रथ के पहिये में ज्यों आरे, वैसे रहते ओत-प्रोत॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु। (अथर्व० १.३१.४)
हमारे माता-पिता सुखी रहें।

जंगम जग का चित्त अचल हो, जिसमें रहता निष्ठावान्।
नित्य युक्त शुभसंकल्पों से, वह मेरा मन हो भगवान्॥

सुसारथी

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २५॥

—यजुः० ३४.६

हे सर्वान्तर्यामिन्! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथि के तुल्य लोगों को अत्यन्त इधर-उधर ले-जाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित, वृद्धादि अवस्था से रहित और अत्यन्त वेगवाला है, वह मेरा मन सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकके धर्म-पथ में सदा चलाया करे।

मानव-मन को बाँध डोर से, इधर-उधर ले-जाता है।
चतुर सारथी ज्यों घोड़ों को, उत्तम चाल चलाता है॥
हृदय-देश में सदा विराजे, जो अतिगामी अजर महान्।
नित्य युक्त शुभसंकल्पों से, वह मन मेरा हो भगवान्॥

सबके लिए सुख दो

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शꣳ राजन्नोषधीभ्यः॥ २६॥ —साम० उत्तरा० १.१.३

हे सर्वत्र प्रकाशमान् परमेश्वर! आप हमारे दूध देनेवाले पशु आदि के लिए सुखकर हों, मनुष्यमात्र के लिए सुखदायी हों, सवारी में काम आनेवाले घोड़े आदि के लिए सुख देवें तथा अन्नादि ओषधियों के द्वारा सुख-सामर्थ्य प्रदान करें।

धेनु, अश्व, अन्न, औषध हमारा कल्याण कमावें।
भगवन् आप सदा हमपर सुख-शान्ति बरसावें॥

सर्वत्र अभय

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥ २७॥

—अथर्व० १९.१५.५

रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः। (अथर्व० ७.११५.४)
मेरे घर में पवित्र कमाई हो।

हे भगवन्! अन्तरिक्षलोक हमें निर्भयता प्रदान करे, द्युलोक व पृथिवीलोक हमारे लिए भयरहित हों, पश्चिम में व पीछे, पूर्व में व आगे, उत्तर में व दक्षिण में व नीचे से, हमें निर्भयता प्राप्त हो, अर्थात् सब ओर से हमें मित्रता प्राप्त कराओ।

मेरे प्रभु अन्तर्यामी! सब विधि अभय प्रदान करें।
अन्तरिक्ष, द्यावापृथिवी सब दिशा भय का नाश करें॥

सबसे अभय

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ २८॥

—अथर्व० १९.१५.६

हे अभय प्रभो! हमें मित्र से भय न हो और अमित्र से भय न हो, जाने हुए व न जाने हुए लोगों से भय न हो, दिन और रात्रि सभी कालों में हम निर्भीक हों, सब दिशाएँ मेरे लिए मित्र-सदृश हों।

मित्र-अमित्र जाने-अनजाने, दिन-रात अभय बनावें।
सभी दिशाएँ मित्र बनें, जीवन में निर्भयता लावें॥

अग्न्याधानमन्त्रः

निम्नलिखित मन्त्र से अग्नि प्रदीप्त करें—

ओं भूर्भुवः स्वः। —गोभिलगृह्य० १.१.११

जगत् का आधार सर्वरक्षक परमात्मा प्राणस्वरूप, दुःखविनाशक और सुख प्रदाता है।

फिर अगले मन्त्र को बोलकर इस अग्नि को हवनकुण्ड में स्थापित करें—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

—यजुः० ३.५

परमेश्वर सबका आधार, सबमें व्यापक, सुखस्वरूप है। वह परमेश्वर संसार के लिए बृहत्त्व के कारण आकाश के समान, फैलाव में पृथिवी के समान है। हे भगवन्! यह पृथिवी जो देवताओं का यज्ञस्थान है, मैं इसकी पीठ पर खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिए

प्रियं मा कृणु देवेषु। (अथर्व० १९.६२.१)
हे प्रभो! मुझे देवों का प्रिय बना दो।

हव्य खानेवाली भौतिक अग्नि को स्थापित करता हूँ।

अगले मन्त्र का उच्चारण करके कुण्ड में अग्नि को खूब प्रज्वलित करें—

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

—यजुः० १५.५४

हे विद्वान्जनों एवं यजमान! तुम उत्तम रीति से चैतन्य को प्राप्त करो। हे यजमान! तुम और यह दोनों इष्ट, अर्थात् वेदाध्ययन, अतिथि-सेवा तथा धार्मिक एवं लोकोपकारी कर्मों का सम्पादन करो। हे विद्वान्जनो! तुम सब इस उत्तम स्थान पर अधिकारपूर्वक बैठो।

समिदाधानमन्त्राः

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से आठ-आठ अङ्गुल की तीन समिधा घृत में भिगो-भिगोकर यज्ञाग्नि में चढ़ावें—

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १॥ —इससे पहली समिधा

हे सब पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर! यह आत्मा तेरे लिए समिधारूप है। हे अग्ने! इससे मुझमें तू प्रकाशित हो और अवश्य ही बढ़। तू हमको बढ़ा और पुत्र-पौत्र, सेवक आदि अच्छी प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेदविद्या के तेज से और धन-धान्य, घृत-दुग्ध, अन्न आदि से समृद्ध कर। यह सुन्दर आहुति सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए है, यह मेरे लिए नहीं है॥ १॥

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ —इस मन्त्र से

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ —यजुः० ३.१-२

—इस मन्त्र से, अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा

हे विद्वान् लोगो! जिस प्रकार प्रेम और श्रद्धा से अतिथि की सेवा करते हो, वैसे ही तुम समिधाओं तथा घृतादि से व्यापनशील

उतो रयिः प्रणतो नोप दस्यति। (ऋ० १०.११७.१)
दानी का धन घटता नहीं है।

अग्नि का सेवन करो और चेताओ। इसमें हवन करने योग्य अच्छे द्रव्यों की यथाविधि आहुति दो। यह सुन्दर आहुति सर्वव्यापक परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं॥ २॥

हे यज्ञकर्त्ता! अग्नि में तपाये हुए शुद्ध घी की इस यज्ञ में आहुति दो, जिससे संसार का कल्याण हो। यह सुन्दर आहुति सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं॥ ३॥

तन्त्वा॑ स॒मिद्भि॑रङ्गिरो घृ॒तेन॑ वर्द्धयामसि।
बृ॒हच्छो॑चा यविष्ठ्य॒ स्वाहा॑॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥
—इससे तीसरी समिधा

इस व्यापनशील एवं गतिशील अग्नि को समिधाओं से और घृत से हम बढ़ाते हैं। यह जो अत्यन्त संयोजक हैं, यह बहुत प्रज्वलित हो। यह सुन्दर समिधा वेदों के प्रकाश करनेहारे सर्वप्रसिद्ध परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं।

पञ्चघृताहुतयः

स्रुवा को अङ्गुष्ठ, मध्यमा और अनामिका से पकड़कर घृताहुति देवें। मन्त्र उच्चारण करके प्रज्वलित अग्नि में नीचे के मन्त्र से पाँच बार घृताहुतियाँ देवें।

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥

हे सब पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर! यह मेरा आत्मा तेरे लिए समिधारूप है। अग्ने! इससे मुझमें तू प्रकाशित हो और अवश्य ही बढ़। तू हमको बढ़ा और पुत्र-पौत्र, सेवक आदि अच्छी प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेद-विद्या के तेज से और धन-धान्य, घृत, दुग्ध, अन्न आदि से समृद्ध कर। यह सुन्दर आहुति सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं है।

जलप्रसेचनमन्त्राः

तत्पश्चात् दाहिनी अञ्जलि में जल लेकर इन मन्त्रों से वेदी के या कुण्ड के पूर्व आदि दिशाओं में चारों ओर छिड़कें।

जाया तप्यते कितवस्य हीना। (ऋ० १०.३४.१०)
जूएबाज की पत्नी दीन-हीन होकर दुःख पाती है।

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ —गोभि० गृह्य० १.३.१

—इस मन्त्र से पूर्व में (दक्षिण से उत्तर की ओर)

हे अखण्ड परमेश्वर! आप प्रसन्न होकर हमें अनुकूल बुद्धि दीजिए।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ —गोभि० गृह्य० १.३.२

—इससे पश्चिम में (दक्षिण से उत्तर की ओर)

हे हितकारी बुद्धिवाले ईश्वर! आप हमें हितकारिणी बुद्धि दीजिए।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ —गोभि० गृह्य० १.३.३

—इससे उत्तर में (पश्चिम से पूर्व की ओर)

हे सब विद्याओं के भण्डार जगदीश्वर! आप प्रसन्न होकर हमें ज्ञान दीजिए।

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

—यजुः० ३०.१

—इससे पूर्व से आरम्भ करके यज्ञकुण्ड के चारों ओर

प्रकाशमय, सबके चलानेहारे परमेश्वर! इस यज्ञ वा उत्तम कर्म को आगे बढ़ाओ और यज्ञ के रक्षक यजमान को ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए आगे बढ़ाओ। अद्भुत स्वभाव, विद्याओं के आधार, बुद्धि को पवित्र करनेहारे परमेश्वर! हमारी बुद्धि को पवित्र कीजिए। शुद्ध विद्या के स्वामी परमात्मन्! हमारी वाणी को मधुर कीजिए।

आघारावाज्याहुतिमन्त्र

अब निम्नलिखित मन्त्रों से दो घृताहुतियाँ प्रज्वलित अग्नि पर देवें—

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

—उत्तरभाग अग्नि में (पश्चिम से पूर्व की ओर)

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के लिए यह सुन्दर आहुति समर्पित है। यह आहुति अग्नि के लिए है, यह आहुति मेरे लिए नहीं है।

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदन्न मम॥

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। (ऋ० ९.७३.६)
दुष्कर्म करनेवाले सत्य के मार्ग को नहीं तर सकते।

—दक्षिणभाग अग्नि में (पश्चिम से पूर्व की ओर)

शान्तिस्वरूप, न्यायकारी परमेश के लिए यह सुन्दर आहुति समर्पित है। यह आहुति सोम के लिए है, यह मेरे लिए नहीं।

आज्यभागाहुतिमन्त्र

निम्नलिखित दो मन्त्रों से यज्ञकुण्ड के मध्य में दो घृताहुति देवें—

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥

सकल जगत् के प्रजापालक जगदीश के लिए यह सुन्दर आहुति समर्पित है। यह आहुति प्रजापति के लिए है, यह मेरे लिए नहीं।

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥

परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए यह सुन्दर आहुति समर्पित है। यह आहुति इन्द्र के लिए है, यह मेरे लिए नहीं।

प्रातःकालीन आहुति के मन्त्र

तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्रों से घृत तथा शाकल्य=सामग्री की आहुति देवें।

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥ —यजुः० ३.९

जो चराचर जगत् का आत्मा, प्रकाशस्वरूप, सूर्यादि लोकों का भी प्रकाशक है, सबके आत्माओं में ज्ञान तथा सद् विद्याओं का उपदेष्टा है, उस परमदेव की प्रसन्नता के लिए यह आहुति है।

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ —यजुः० ३.९

जो सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाला जगदीश्वर, मानवमात्र के लिए वेदवाणी से सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाला और बिजली, सूर्य, अग्नि आदि में तेज का प्रकाशक है। उस परमेश्वर के अनुग्रह के लिए यह आहुति है।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ —यजुः० ३.९

जिसकी ज्योति से सारा जगत् जगमगा रहा है, जो सकल विद्याओं का प्रकाश करनेवाला, सबका उपास्य देव है, उस परमेश्वर की कृपा के लिए यह आहुति है।

पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात्। (ऋ० १०.११७.७)
कञ्जूस पीछे रह जाते हैं, दानी आगे बढ़ जाता है।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।

जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥ —यजुः० ३.१०

सर्वप्रकाशक, अन्तर्यामी प्रभु ने जगत् को उत्पन्न कर धारण किया हुआ है। जो सूर्य को प्रकाशित करनेवाले प्रातःकाल में यज्ञ की आहुतियों का सेवन कर सब ओर फैलाता है, वह जगदीश सब व्यवहार सिद्ध करे।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।

इदमग्नये प्राणाय—इदन्न मम॥ १॥

ईश्वर प्राणाधार है। गतिशील अग्नि के उत्तम प्रभाव तथा प्राण वायु की शुद्धि के लिए यह सुन्दर आहुति है। यह आहुति संसार के कल्याण के लिए अग्नि की भेंट है, यह मेरे लिए नहीं।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥

इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम॥ २॥

परमेश्वर सर्वव्यापी है। पवन के उत्तम प्रभाव तथा अपानवायु (भीतर आनेवाले श्वास) की स्वच्छता के लिए यह सुन्दर आहुति है। यह आहुति वायु की स्वच्छता के लिए है, मेरे लिए नहीं है।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥

इदमादित्याय व्यानाय—इदन्न मम॥ ३॥

जगदीश सुखस्वरूप है। सूर्य के उत्तम तेज तथा व्यानवायु (शरीर में घूमनेवाले वायु) के लिए यह सुन्दर आहुति है। यह आहुति सूर्य के उत्तम तेज तथा व्यानवायु की पवित्रता के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम॥ ४॥

परमेश्वर सर्वाधार, सर्वव्यापक, दुःख-विनाशक, सुख-प्रदाता है। अग्नि, वायु, सूर्य उसी के नियन्त्रण में हैं। वही प्राण, अपान, व्यान से जीवन का पोषण और रक्षण करता है। यह आहुति उसी जगदीश के लिए है, मेरे लिए नहीं।

न स सखा यो न ददाति सख्ये। (ऋ० १०.११७.४)
मित्र की सहायता न करनेवाला मित्र नहीं होता।

ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ ५॥

सर्वरक्षक ओ३म् सर्वव्यापक, ज्योतिस्वरूप, आनन्दप्रदाता, अमृतरूप, सबसे बड़ा, सर्वाधार, दुःख-विनाशक और सुखस्वरूप है, ऐसे परमेश्वर के लिए यह सुन्दर आहुति समर्पित है।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ ६॥

—यजुः० ३२.१४

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! जिस मेधा बुद्धि वा धन की कामना विद्वान् जन तथा पितर=माननीय रक्षक महात्माजन करते वा प्राप्त होते हैं, उसी बुद्धि व धन से हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! मुझको मेधावी बनाइए, यह मेरी वाणी सत्य होवे।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा॥ —यजुः० ३०.३

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे समस्त दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥

—यजुः० ४०.१६

हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अच्छे, धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइए और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

सुवीर्यस्य पतयः स्याम। (ऋ० ६.४७.१२)
हम श्रेष्ठ सामर्थ्य प्राप्त करें।

पूर्णाहुति

तत्पश्चात् गायत्री-मन्त्र—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ —यजुः० ३६.३

ओम् प्रभु का मुख्य नाम है। वह प्राणों का प्राण, दुःखनाशक, सुखस्वरूप है। उस सकल जगत् के उत्पादक प्रभु के ग्रहण करने योग्य विशुद्ध तेज को हम धारण करें। जो प्रभु हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

इस मन्त्र से एक या अधिक आहुति देने के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र को तीन बार बोलकर एक-एक आहुति देवें—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा।

हे जगदीश्वर! हम परोपकार के लिए जिस कर्म को करते हैं, वह कर्म आपकी कृपा से परोपकार के लिए समर्थ हो। इसलिए यह कर्म आपके लिए समर्पित है।

सायंकाल का यज्ञ

आचमन, अङ्गस्पर्श, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना करके तत्पश्चात् अग्न्याधान से लेकर आघारावाज्यभागाहुति विधि (पृष्ठ ६७ से ७१ तक) के बाद निम्नलिखित मन्त्रों से घृत तथा सामग्री से आहुति दें—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ १॥ —यजुः० ३.९

जो परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप है, उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिए होम करते हैं, जिससे जल, वायु, वृष्टि की शुद्धि हो और सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो।

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ २॥ —यजुः० ३.९

वह ईश्वर सब सत्य विद्याओं का प्रकाशक है तथा यह भौतिक अग्नि आरोग्य और बुद्धि को बढ़ानेवाली है।

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ ३॥ —यजुः० ३.९

इस तीसरे मन्त्र का मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देवें।
(इसका अर्थ मन्त्र १ के समान ही है)

सुगा ऋतस्य पन्थाः। (ऋ० ८.३१.१३)
सत्य का मार्ग बड़ा सुगम है।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या।
जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा॥ ४॥ —यजुः० ३.१०

जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक, वायु और अग्नि के साथ पूर्ण, सबपर प्रीति करनेवाला और सबके अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त है, वह अग्निरूप परमेश्वर हमें प्राप्त हो जिसके लिए हम होम करते हैं।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय—इदन्न मम॥ १॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम॥ २॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदमादित्याय व्यानाय—इदन्न मम॥ ३॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य—इदन्न मम॥ ४॥
ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ ५॥
ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १०॥
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा॥ ११॥
ओम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥ १२॥

(उपर्युक्त मन्त्रों के अर्थ पृष्ठ ७२-७३ पर देखें)

एक या अधिक बार गायत्री मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा॥ —यजुः० ३६.६

(अर्थ पृष्ठ ३२ पर देखें)

बोलकर आहुति देने के पश्चात्

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा।

इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके एक-एक आहुति देवें।

(अर्थ पृष्ठ ७४ पर देखें)

अनागोहत्या वै भीमा। (अथर्व० १०.१.२९)
निरपराध की हत्या बड़ी भयंकर है।

प्रातः तथा सायं दोनों समय का इकट्ठा यज्ञ

जो प्रातःकाल तथा सायंकाल यज्ञ करते हैं, वे प्रातःकाल की आहुतियाँ प्रातः तथा सायंकाल की आहुतियाँ सायं को दें, किन्तु जो एक बार ही यज्ञ करते हैं, वे दोनों समय की आहुतियाँ निम्नलिखित प्रकार से दें—

आचमन, अङ्गस्पर्श, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना के पश्चात् अग्न्याधान, आघारावाज्यभागाहुति विधि (पृष्ठ ६७ से ७१ तक) के उपरान्त घृत तथा सामग्री की आहुति दें—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥ १॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ २॥

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ ३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥ ४॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय—इदं न मम॥ ५॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय—इदं न मम॥ ६॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय—इदं न मम॥ ७॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदं न मम॥ ८॥

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ ९॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १०॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा॥ ११॥

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥ १२॥

चार आहुति आघारावाज्यभागाहुति घी की दें—

मात्र तिष्ठः पराङ् मनाः। (अथर्व० ८.१.९)
इस संसार में उदासीन मन से मत रहो।

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥
ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदन्न मम॥
ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥
ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥
ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ १॥
ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ २॥
ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ ३॥
(इस मन्त्र को मन में उच्चारण करके आहुति दें)
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या।
जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा॥ ४॥ —यजुः० ३.१०
ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय—इदं न मम॥ ५॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय—इदं न मम॥ ६॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय—इदं न मम॥ ७॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदं न मम॥ ८॥
ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ ९॥
ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १०॥
ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा॥ ११॥
ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा॥ १२॥
एक या अधिक बार गायत्री मन्त्र—
ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा॥ —यजुः० ३६.६

अघमस्त्वघकृते। (अथर्व० १०.१.५)
पापी को दुःख ही मिलता है।

ओं सर्वं वै पूर्णꣲ स्वाहा।

इस मन्त्र को तीन बार बोलकर तीन आहुति देवें।

(अर्थ के लिए कृपया पृष्ठ ७१ से ७५ तक देखें)

पूर्णाहुतिप्रकरण

अब निम्नलिखित दो मन्त्रों से दो घृताहुतियाँ प्रज्वलित अग्नि में देवें—

आघारावाज्याहुति

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

इससे वेदी के उत्तरभाग अग्नि में (पश्चिम से पूर्व की ओर)

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदन्न मम॥

दक्षिणभाग में (पश्चिम से पूर्व की ओर)

आज्यभागाहुतिमन्त्र

निम्नलिखित दो मन्त्रों से यज्ञकुण्ड के मध्य में दो घृताहुति देवें—

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥

(उपर्युक्त मन्त्रों के अर्थ के लिए पृष्ठ ७० से ७१ तक देखें)

फिर निम्नलिखित मन्त्रों से घी की एक-एक आहुति देवें—

व्याहृत्याहुतिमन्त्राः

ओं भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

हे प्रभो! तू प्राणदाता है। अग्नि के लिए यह सुन्दर आहुति है। यह अग्नि के लिए है, मेरे लिए नहीं है।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदं वायवे—इदन्न मम॥

हे दुःखविनाशक प्रभो! यह सुन्दर आहुति वायु के लिए समर्पित है, यह मेरे लिए नहीं है।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय—इदन्न मम॥

हे सुखस्वरूप, सर्वप्रकाशक ईश्वर! यह सुन्दर आहुति सूर्य के

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्। (अथर्व० ८.१.६)
हे पुरुष! तेरा विकास हो ह्रास नहीं।

लिए है। सूर्य के लिए यह आहुति है, मेरे लिए नहीं है।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम॥ —गो० गृ० सू० १.३.४

हे जगदीश्वर! तू प्राणदाता, दुःखहर्त्ता, सुखस्वरूप है। अग्नि, वायु, सूर्य के लिए ये सुन्दर आहुतियाँ हैं। ये आहुतियाँ अग्नि, वायु, सूर्य के लिए हैं, मेरे लिए नहीं हैं।

स्विष्टकृदाहुतिमन्त्रः

निम्नलिखित मन्त्र से घृत अथवा भात की आहुति देवें—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां
कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा॥
इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम॥ —आश्व० १.१०.२२

जो कुछ इस यज्ञकर्म में मैंने विधि से अधिक किया है अथवा जो कुछ भी विधि से न्यून किया है, शुभ इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला परमात्मदेव सब शुभ इच्छाओं को जानता है, मेरी शुभ इच्छाओं को पूर्ण कर देवे। शुभ इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले यज्ञ को सफल बनाने, सब प्रायश्चित्तरूप दी गई आहुतियों एवं कामनाओं को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर के लिए यह आहुति है। वह परमात्मा हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करे तथा श्रद्धा से मेरा यज्ञकर्म उनकी कृपा से सदा सफल हो।

यह आहुति कामना पूर्ण करनेवाले जगदीश्वर के लिए सादर समर्पित है, इसमें मेरा कुछ नहीं है।

प्राजापत्याहुतिमन्त्रः

इस मन्त्र को मन में बोलकर घृताहुति देवें—

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥

—यजुः० १८.२८

सकल जगत् के प्रजापालक जगदीश के लिए यह सुन्दर आहुति समर्पित है। यह आहुति प्रजापति के लिए है, यह मेरे लिए नहीं है।

मर्यादे पुत्रमा धेहि। (अथर्व० ६.८१.२)
सन्तान को मर्यादा में रहना सिखाओ।

निम्न चार मन्त्रों से एक-एक घृताहुति देवें—

आज्याहुतिमन्त्राः

**ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः॥
आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥**
—ऋ० ९.६६.१९

हे प्राणों के प्राण, दुःखविनाशक, प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप हमारे जीवन की रक्षा करते हो, आप हमें बल और अन्नादि प्राप्त कराओ और दुष्ट जीव-जन्तुओं से हमारी रक्षा करो। यह आहुति पतितपावन परमात्मा के लिए है, यह मेरे लिए नहीं है।

**ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥**
—ऋ० ९.६६.२०

ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापक परमात्मा हमें पवित्र करनेवाला, बुरे विचारों से बचानेवाला है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को शुभ मार्ग में चलानेवाला, सबका हितकारी, सबका अगुआ परमात्मा ही है। उस स्तुतियोग्य परमेश्वर को हम प्राप्त करते हैं। यह आहुति पावन परमात्मा के लिए है, मेरे लिए नहीं।

**ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥
दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥**
—ऋ० ९.६६.२१

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! आप उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता हो, आप हमें बल और पराक्रम प्राप्त कराओ। मुझमें अन्नादि और शरीर की पुष्टि को धारण कराओ। यह सुन्दर आहुति महापराक्रमी और बल के आश्रयदाता परमात्मा के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥ —ऋ० १०.१२१.१०

हे प्रजापालक परमेश्वर! सब उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों को आपने अधिकारपूर्वक रचा है, आपके सिवा सृष्टि आदि को बनाने

अस्माकꣳसन्त्वाशिषः सत्याः। (यजुः० २.१०)
हमारी कामनाएँ भी सच्ची ही हों।

का सामर्थ्य अन्य किसी में भी नहीं है। जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले होके हम आपका आश्रय लेवें, वह-वह हमारी कामना सिद्ध होवे, जिससे हम धनैश्वर्यों के स्वामी होवें। यह आहुति धन-बल के भण्डार ईश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं।

अष्टाज्याहुतिमन्त्राः

अब नीचे दिये हुए मन्त्रों से घृत की आहुतियाँ देवें—

ओं त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥ —ऋ० ४.१.४

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप हमारे सब दृश्य-अदृश्य के जाननेवाले हैं। आप यज्ञ करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ, अत्यन्त तेजस्वी, प्रकाशमय हैं। श्रेष्ठ, ग्रहण करने योग्य विद्वान् के अनादर से हमें पृथक् रक्खें तथा सब प्रकार के द्वेषभावों को हमसे दूर करें। यह आहुति श्रेष्ठ एवं ज्ञानस्वरूप परमात्मा के लिए है, यह मेरे लिए नहीं है।

ओं स त्वं नो अग्नेऽ वमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ २॥ —ऋ० ४.१.५

हे दिव्य गुणों के भण्डार प्रभो! आप समीपता से हमारी रक्षा करनेवाले हो, इस प्रभातवेला में, यज्ञादि शुभकर्मों में हमारे अत्यन्त समीप हो। हमें श्रेष्ठ विद्वानों का सत्संग प्राप्त कराओ और वे हमारे लिए सुखकारी ज्ञान को प्रकाशित कर हमें अच्छी प्रकार से प्राप्त हों। यह आहुति श्रेष्ठ एवं ज्ञानस्वरूप परमात्मा के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ३॥
—ऋ० १.२५.१९

हे सर्वश्रेष्ठ वरणीय परमेश्वर! आज अपनी रक्षा और विज्ञान को चाहता हुआ मैं आपकी अच्छी प्रकार स्तुति करता हूँ। आप मेरी इस स्तुति को सुन लीजिए और मुझे विद्या-दान से सुख दीजिए।

न स्तेयमद्मि। (अथर्व० १४.१.५७) मैं चोरी का माल न खाऊँ।

अपनी रक्षा का इच्छुक मैं आपको पुकारकर यह आहुति देता हूँ।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ४॥ —ऋ० १.२४.११

हे वरुण! शुभकर्मों वा सत्यवाणी वेद से वन्दना करता हुआ मैं आपको प्राप्त करूँ। मैं आपसे उसी पूर्ण आयु की याचना करता हूँ, जिस आयु की यज्ञ करनेवाले श्रेष्ठजन आशा करते हैं। हे प्रशंसनीय प्रभो! आप मेरी प्रार्थना को सुनें। मेरा जीवन असमय में नष्ट न हो। मैं पूर्ण आयु को प्राप्त करके शुभकर्मों के आचरण से ऊँचा उठूँ, इसी भावना से यह आहुति आपको समर्पित है।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम॥ ५॥ —कात्यायनश्रौत० २५.१.११

हे वरणीय प्रभो! महान् यज्ञों के सम्बन्ध में जो बन्धन या रुकावटें फैली हुई हैं, उनको सकल जगत् के रचनेवाले सर्वव्यापक आप तथा पूजनीय विद्वान् लोग आज हमसे छुड़ावें (दूर करें)। यह सुन्दर आहुति वरुण, सविता, विष्णु नामवाले परमात्मा व बहुत प्रशंसावाले विद्वानों के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम॥ ६॥ —कात्यायनश्रौत० २५.१.११

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप सर्वत्र व्यापक हो। सर्वव्यापक होकर ही आप सर्वत्र हमारी रक्षा करते हो, हमारा कल्याण करते हो, आप निर्दोषों को पवित्र करनेवाले हो। हे सर्वव्यापक प्रभो! आप हमारे इस यज्ञ को सफल बनाइए और हमें रोग-निवारक शक्ति दीजिए। ये जो कुछ है, आपका है, आपके अर्पण है, इसमें मेरा कुछ नहीं है।

असन्तापं मे हृदयम्। (अथर्व० १६.३.६)
मेरा हृदय सन्ताप से रहित हो।

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च—इदन्न मम॥ ७॥

—ऋ० १.२४.१५

हे वरुण! सुदृढ़ पाश को दूर करो, हमें नीच, मिथ्या-भाषणादि से हटाओ, मध्यम प्रकार के राग-द्वेषादि को ढीला कर दो, जिससे लोग आपके सत्याचरणरूपी व्रतों को धारण कर, पापकर्मों से अलग रहकर, अखण्ड आनन्दवाले मोक्ष को प्राप्त कर सकें। सर्वश्रेष्ठ, अविनाशी, मोक्षदाता प्रभु को यह आहुति समर्पित है।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम॥ ८॥ —यजुः० ५.३

हे यज्ञरूप प्रभो! हमारे मध्य पापरहित, श्रेष्ठ ज्ञानवाले, उत्तम मनवाले स्त्री-पुरुष हों और वे यज्ञ का लोप न करें और यज्ञों के पालक को पीड़ा न पहुँचाएँ। वैदिक विद्वान् आज हमारे लिए कल्याणकारी होवें। यह आहुति ज्ञान के भण्डार परमात्मा के निमित्त है, मेरे लिए नहीं।

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा॥

इस मन्त्र से शेष घृत को स्रुवा में भरकर तथा शेष साकल्य=सामग्री से भी तीन बार पूर्णाहुति देवें।

प्रभुकृपा से यज्ञ की सब क्रियाएँ निश्चय से पूर्ण हुई हैं यह मैं सत्य कहता हूँ तथा अपने-आपको प्रभु के प्रति समर्पित करता हूँ।

समस्तजन निश्चय से उस अखण्डैकरस परब्रह्म से ओत-प्रोत हो जाएँ। उस सर्वविधपूर्ण ब्रह्म के लिए मेरा सर्वस्व समर्पित है।

मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युः। (अथर्व० १७.१.२९)
मुझे पाप व मृत्यु न व्यापें।

यज्ञ-प्रार्थना

यज्ञरूप प्रभो! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए॥
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक-सागर से तरें॥
पंचयज्ञादिक रचाएँ लोक के उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें॥
भावना मिट जाए मन से पाप-अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की॥
लाभकारी हों हवन हर प्राणधारी के लिए।
वायु, जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये॥
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा, प्रेमपथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे।
'नाथ' करुणारूप करुणा आपकी सबपर रहे॥
पूजनीय प्रभो! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए॥

संगठन-सूक्त

प्रभु से प्रार्थना—

ओं संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥

हे प्रभो! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं, कीजिए धन-वृष्टि को॥

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानाम्। (ऋ० ९.८७.३)
तत्त्वदर्शी विद्वान् ही जन-नायक हों।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥

—ऋ० १०.१९१.१-४

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख-सम्पदा॥

राष्ट्रिय प्रार्थना

ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ —यजुर्वेद २२।२२

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हो द्विज ब्रह्म-तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल-विनाशकारी॥
होवें दुधारू गौएँ पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही॥
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान-पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें पर्जन्य ताप धोवें॥
फल-फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी।
हो योगक्षेमकारी स्वाधीनता हमारी॥

वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान्। (ऋ० १०.११७.७)
उपदेशक विद्वान् चुप रहनेवाले से श्रेष्ठ है।

विशेष आहुतियाँ

(यदि अधिक मन्त्रों से आहुति देना अभीष्ट हो तो निम्न मन्त्रों से अधिक आहुतियाँ दी जा सकती हैं, यद्यपि ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित पद्धति में इनका विधान नहीं है)।

ओं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

—ऋ० ७.५९.१२

हम लोग पुण्यरूप, यशयुक्त, आत्मा और शरीर के बल को बढ़ानेवाले, तीनों कालों के ज्ञाता परमेश्वर की नित्य अच्छी प्रकार उपासना करें। जैसे लता से जुड़ा हुआ खरबूजा पककर तथा मधुर होकर स्वत: बेल से छूट जाता है वैसे ही हे परमेश्वर! हम यशस्वी जीवनवाले होकर जन्म-मरण के बन्धन से छूटकर आपकी कृपा से मोक्ष को प्राप्त करें।

ओं पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जꣳ शतक्रतो॥ —यजुः० ३.४९

हे जगदीश! जो सुगन्धित द्रव्यों से पूर्ण आहुति आकाश में जाकर वृष्टि से पूर्ण हुई, पृथिवी में उत्तम जल, रस को अच्छे प्रकार से प्राप्त कराती है, उससे हे असंख्यात कर्म व प्रज्ञावाले प्रभो! हम दोनों (पुरोहित और यजमान) उत्तम अन्नादि पदार्थ और पराक्रमयुक्त वस्तुओं को प्राप्त करें।

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

—उपनिषद, शान्तिपाठ

वह परमेश्वर पूर्ण है, यह दृश्यमान जगत् भी स्वसत्ता में सर्वथा पूर्ण है, पूर्णस्वरूप भगवान् से ही यह पूर्ण जगत् उदय होता है। उस परमपूर्ण परमेश्वर का पूर्ण स्वरूप लिये जाने पर भी अनन्त महिमामय भगवान् सर्वत्र पूर्ण ही रह जाता है, वह कदापि खण्डित नहीं होता। हम उसी पूर्ण परमात्मा की उपासना करें, अन्य की कदापि नहीं।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। (ऋ० १०.१३७.१)
हे विद्वानो! गिरे हुओं को ऊपर उठाओ।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥
—यजुः० १.३

जो यज्ञ असंख्यात ब्रह्माण्डों का धारक और शुद्धि करनेवाला श्रेष्ठ कर्म है, सुखदायक एवं पवित्र है, उस यज्ञ को स्वयं प्रकाशस्वरूप वसु आदि तैंतीस देवों का उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर पवित्र करे। वेदज्ञान प्रदाता परमेश्वर की कृपा से हम पवित्रता प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करें।

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ —यजुः० ३६.९

संसार की रचना करनेवाला परमेश्वर जैसे हमारे लिए कल्याणकारी है, वैसे प्राण के तुल्य प्रिय मित्र, जल के समान शान्ति देनेवाले जन, पदार्थों के स्वामी, वेदवाणी के रक्षक, विद्वान् हमारे लिए रक्षक और कल्याणकारी हैं, हम भी इसी प्रकार अन्यों के लिए कल्याण करनेवाले हों।

ओं स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ —अथर्व० १९.७१.१

ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो! इष्टफल देनेवाली, ज्ञानमयी वेदवाणी मेरे द्वारा प्रशंसित की गई है। हे विद्वान् लोगो! यह वेदवाणी द्विजों को पवित्र करनेवाली है। आयु, प्राण, सुप्रजा, गौ आदि पशु, कीर्ति, धन और वेदाभ्यास के तेजवाली है, इसको द्विजों में आगे प्रचारित करो। इसके द्वारा प्राप्त किये गये शुभ कर्मों को मेरे अर्पण करके तुम ब्रह्मलोक को प्राप्त करो।

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ —यजुः० १.५

हे व्रतपते परमात्मन्! मैं झूठ से अलग, वेद-विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों, निर्भ्रम, सर्वहित तत्त्व, अर्थात् सिद्धान्तों के प्रकाश

नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्। (ऋ० १०.३४.३)
मैं जुआरियों को कुछ भोग नहीं देता।

करनेहारों में सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया हुआ, सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है, इसको ग्रहण करने का व्रत लेता हूँ। आप कृपा करके मेरे इस सत्यव्रत को अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए जिससे कि मैं सत्यव्रत के नियमपालन करने में समर्थ हो सकूँ। मैं अब सत्यव्रत के नियम पर चलूँगा।

ओं वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
—यजुः० ३१.१८

मैंने जान लिया है कि परमात्मा महान् है, सूर्यवत् प्रकाशमान है, अन्धकार व अज्ञान से परे है, उसी को जानकर मनुष्य दुःखदायी मृत्यु से तर सकता है। मृत्यु से बचने और अभीष्ट स्थान—मोक्ष को प्राप्त करने का इससे भिन्न कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
—यजुः० २५.२१

हे यजनशील विद्वानो! आपके सम्पर्क से हमारे शरीर हृष्ट-पुष्ट अङ्गोंवाले बनें, ब्रह्मचर्यादि नियमों के पालन से हम कानों से सदा भद्र सुनें, आँखों से भद्र देखें तथा इस प्रकार विद्वानों के लिए हितकारक दीर्घ आयु प्राप्त करें।

ओम् अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।
मृळा सुक्षत्र मृळय॥ —ऋ० ७.८९.४

पानी (आनन्द-सागर प्रभु) में बैठे हुए भी मुझ स्तोता को हे प्रभो! सदा प्यास लगी रहती है। हे शुभ-शक्तिवाले! मुझे सदा सुखी करो।

ओम् अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥
—ऋ० १०.४८.५

मैं शक्तिशाली आत्मा हूँ। मैं कभी हार नहीं सकता। मृत्यु मुझे कभी आ नहीं सकती। हे मनुष्यो! यथार्थ कर्म करते हुए उस प्रभु से

स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः। (अथर्व० १८.४.१४)
पुण्यात्मा के लिए विद्वानों का अनुकरण स्वर्ग का रास्ता है।

ऐश्वर्य की याचना करो। उस प्रभु की मैत्री में कभी विनाश नहीं होता।

ओम् अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥

—ऋ० १०.५३.८

हे मित्रो! यह (संसाररूपी) पथरीली नदी बह रही है। उद्यम करो और इसे तर जाओ। हम अपने अकल्याणकारी, अभद्र कार्यों के भार को यहीं छोड़ देवें तथा शिव, अर्थात् मंगलकारी अवस्थाओं को प्राप्त करें।

ओं विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥

—ऋ० १०.५५.५

एक ऐसे नौजवान को जोकि विविध काम करनेवाला है और रण में बहुतों को मार भगानेवाला है, (आश्चर्य है) उसे एक 'बूढ़ा' (काल) निगल जाता है। उस देव के इस महिमाशाली काव्य को देखो, कल तक जो सांस ले रहा था आज वही मरा पड़ा है।

ओं न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते॥

—ऋ० १०.११७.१

देवता भूखों को ही मृत्यु नहीं देते अपितु खाते-पीते अमीर लोग भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। दाता की सम्पत्तियाँ कभी कम नहीं होती। अदाता कभी सुख नहीं पाता।

ओं परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥

—ऋ० १०.१८.१

हे मृत्यो! देवमार्ग से भिन्न जो तुम्हारा मार्ग है तुम उसपर चली जाओ। हे सब-कुछ देखने और सुननेवाली मृत्यो! मैं तुझे बलपूर्वक कह रहा हूँ कि तू हमारी प्रजाओं और वीर पुरुषों को पीड़ित मत कर।

ऋतस्य पथि वेधा अपायि। (ऋ० ६.४४.८)
सत्य के पथिक की रक्षा ईश्वर करता है।

ओं मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः॥

—ऋ० १०.१८.२

हे मनुष्यो! जब तुम मृत्यु के पैर को परे धकेलते हुए चलोगे तो तुम दीर्घायु प्राप्त करोगे तथा प्रजा और धन से परितृप्त हो जाओगे। बाहर-भीतर सब ओर से पवित्र होकर यज्ञीय जीवन व्यतीत करोगे।

ओं यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्॥

—ऋ० १०.१८.५

जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के बाद दिन का क्रम सम्यक्तया अनवरत गति से चलता है, जिस प्रकार एक ऋतु के बाद दूसरी ऋतु नियम से आती जाती है और जिस प्रकार हमारे पूर्व जन्मकृत कर्म भावी जीवन से सम्बद्ध होते हैं उसी प्रकार परमात्मदेव प्राणमय संसार को पुनः पुनः आयु से संयुक्त करे।

ओम् अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाजऽइत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥ —यजुः० ३५.४

हे मनुष्यो! जो कल तक रहे न रहे—ऐसे शरीर में तुम्हारा निवास है। पत्ते के समान चञ्चल शरीर में तुम स्थित हो। निश्चय से तुम इन्द्रियों की सेवा में अनुरक्त हो। आओ! अब तो उस पूर्णपुरुष परमेश्वर की आराधना कर लो।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

—यजुः० ३६.२४

हे परमेश्वर! मैं आपके देव-(विद्वान्)-हितकारी, अनादिकाल से वर्त्तमान, विशुद्धचक्षु, अर्थात् स्वरूप को अपने हृदय में अनुभव कर रहा हूँ। हम सौ वर्ष तक—सदा देखते रहें, जीवित बने रहें, शास्त्रों के मंगल-वचनों का श्रवण करते रहें, दूसरों के लिए हितकारी

महिमा तेऽ न्येन न सन्नशे। (यजु:० २३.१५)
तेरी महिमा अन्यों के कारण नहीं हो सकती।

वचनों को बोलते रहें तथा दीनता-रहित होकर सौ वर्ष से भी अधिक सुन्दर जीवन जीवें।

ओं दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ —यजु:० ३६.१८

दृढ़तापूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए तुम सब मित्र-दृष्टि से सब प्राणियों को निहारो! मैं मित्र-दृष्टि से समस्त भूतों को देखूँ; हम सब मित्र-दृष्टि से एक-दूसरे को देखते रहें।

ओम् ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

—यजु:० ४०.१

इस गतिशील जगत् में जो कुछ भी है वह उस ईश से आच्छादित है, अत: त्याग-भावना से भोग करो; लोभ मत करो। यह समस्त धन किसका है—उस परमात्मा का ही तो है।

ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

—यजु:० ४०.२

मनुष्य इस संसार में धर्मयुक्त, वेदोक्त, निष्काम कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। इस प्रकार उसमें अधर्मयुक्त, अवैदिक, काम्य कर्म लिप्त नहीं होंगे और इससे कर्मों का अभाव भी नहीं होगा।

ओं वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳस्मर॥

—यजु:० ४०.१५

हे कर्मशील जीव! शरीर छूटते समय तू 'ओ३म्' का स्मरण कर। अपने सामर्थ्य के लिए उसे स्मरण कर। कृतकर्म को याद कर, क्योंकि यह धनञ्जयादि वायु अपने कारणरूप को प्राप्त होता है और यह शरीर भस्म हो जाता है।

ओं मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः॥

—अथर्व० ८.२.२३

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः । (ऋ० ४.३३.११)
बिना परिश्रम किये देवों की मित्रता (सहाय) नहीं मिलती।

मृत्यु दोपायों और चौपायों का शासक है। हे पृथिवी के स्वामी! उठ, तुझे मृत्यु से ऊपर उठाता हूँ। तू भय मत कर।

ओं सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ —अथर्व० ८.२.२५

जहाँ यह ब्रह्म जीवन के लिए परिधि (कोट के समान रक्षक) बना लिया जाता है वहाँ घोड़ा, पुरुष और पशु सभी सुरक्षित रहते हैं, अर्थात् ब्रह्माश्रित व्यक्ति जीवन्मुक्त हो सब सुखों को भोगते हैं।

ओम् अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥
—अथर्व० १०.८.४४

उस कामना-रहित, धीर, अमृत, स्वयंभू, आनन्दरस से परितृप्त तथा किसी प्रकार की कोई न्यूनता न रखनेवाले परमात्मा को जो आत्मस्वरूप जान लेते हैं वे धीर, अजर, वीर पुरुष मृत्यु से निर्भय होकर सदा आनन्द भोगते हैं।

ओं ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥ —अथर्व० ११.५.१९

ब्रह्मचर्य (वेदाभ्यास और इन्द्रियदमन) तथा तप से विद्वान् मृत्यु को (मृत्यु के कारण—निरुत्साह, दरिद्रता आदि को) नष्ट कर देते हैं। ब्रह्मचर्य (नियमपालन) से ही सूर्य या आत्मा ने सब पदार्थों या इन्द्रियों के लिए सुख, अर्थात् प्रकाश को धारण किया है।

ओं कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥
—अथर्व० १९.५३.१

सात रश्मियों-(सप्तविध किरणों)-वाला, हज़ार धुरों को चलानेवाला, कभी भी जीर्ण न होनेवाला, महाबली यह कालरूपी घोड़ा दौड़ा जा रहा है। सब उत्पन्न वस्तुएँ इसके द्वारा चक्रवत् घुमाई जा रही हैं। इस घोड़े पर ज्ञानी और क्रान्तदर्शी लोग ही सवार हो पाते हैं।

अहं भूमिमददामार्याय। (ऋ० ४.२६.२)
मैं यह भूमि आर्यों को देता हूँ।

ओं पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन्॥
—अथर्व० १९.५३.३

यह काल जलपूर्ण कुम्भ के समान स्थित है। ज्ञानी लोग इसके इस स्वरूप को अनेक रूपों में प्रत्यक्ष देखते हैं। यह काल सम्पूर्ण भुवनों में स्थित है। इसे सर्वत्र व्यापक कहा जाता है।

दक्षिणा व हुतशेष

जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिमाना हो जिमा, दक्षिणा देके सबको विदा कर स्त्री-पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीमके पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मंगलकार्य (महावामदेव्यगान)

गर्भाधानादि से लेकर संन्यास-संस्कारपर्यन्त पूर्वोक्त कार्य और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें। मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥ १॥

ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥ २॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्। शतं भवास्यूतये॥ ३॥ —साम० उत्तरार्चिक, अध्याय १, खण्ड ४, मन्त्र १-३

हे परमेश्वर! अद्भुत, आश्चर्यजनक गुण-कर्म-स्वभाववाला तथा जीवात्मा को सदा उन्नति की ओर ले-जानेवाला तू किस प्रसादनविधि से, किस कर्म व्यवहार से और किस आचरण से हमारा मित्र होता है या हो सकता है? **उत्तर**—धन से और ज्ञान से॥ १॥

सत्यस्वरूप, तीनों कालों में एक रस रहनेवाले, आनन्द देनेवाली वस्तुओं में तुझे कौन-सी वस्तु सबसे अधिक आनन्दित करती या प्रसन्न करती है?

उत्तर—प्रसन्न करनेवाली वस्तुओं में यज्ञ ही तुझे सबसे अधिक

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम्। (अथर्व० ९.४.२०)
तुम्हारे घरों में गायें हों, सन्तान हो और शारीरिक बल हो।

आनन्दित करता है। यज्ञ से प्रसन्न होकर तू जीव के दृढ़ बन्धनों को, नाना प्रकार के पाशों को तोड़ देता है, काट डालता है और उसे मोक्षरूपी धन प्रदान करता है॥ २॥

हे जगदीश्वर! क्योंकि तू असंख्य ऐश्वर्य प्रदान करता है; अतः हमारा, हमारे मित्रों और अपने भक्तों और उपासकों की उत्तम रीति से रक्षा के लिए हो। इसीलिए तू हमारे लिए सब प्रकार से उपासना करने योग्य है॥ ३॥

महावामदेव्यम्

काऽ५या नश्चा३ यित्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः स। खा। औ३ होहाइ। कया२३ शचाइ। ष्ठयौहो३। हुंमा२। वार्तो३ऽ५हाइ॥ (१)॥

काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा३दानाम्। मा। हिष्ठा मात्सादन्ध। सा। औ३होहाइ। दृढा२३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२। वाऽ३सो३५ हायि॥ (२)॥

आऽ५भी। षु णा३ः सा३खीनाम्। आ। विता जरायि तृ। णाम्। औ२३ हो हायि। शता२३म्भवा। सियौहो३ हुम्मा२। ताऽ२ यो३ऽ५हायि॥ (३)॥

—साम० उत्तरार्चिके। अध्याये १, खं० ४, त्रिक ३, मं० १,२,३

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री-पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी, लोकप्रिय, परोपकारी, सज्जन, विद्वान् वा त्यागी, पक्षपातरहित संन्यासी, जो सदा विद्या की वृद्धि और सबके कल्याणार्थ वर्त्तनेवाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन-दान आदि से उत्तम प्रकार से यथा-सामर्थ्य सत्कृत करें।

'पश्चात् जो कोई देखने ही के लिए आये हों उनको भी सत्कारपूर्वक विदा करें।'

'यह सामान्यविधि, अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है।'

पुष्ट्यै गौपालम्। (यजुः० ३०.११)
पुष्टि के लिए गौ पालकों को नियुक्त करो।

पक्ष-यज्ञ-विधि

दर्शेष्टि—अमावास्या यज्ञ

पौर्णमासी और अमावास्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् स्थालीपाक=मोहनभोग, मीठा भात, खीर, खिचड़ी [बिना नमक], मोदक आदि बनाके निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति करें—

ओम् अग्नये स्वाहा॥

मैं (**अग्नये**) अग्नि के लिए (**स्वाहा**) यह आहुति देता हूँ।

ओम् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा॥

मैं (**इन्द्राग्नीभ्याम्**) विद्युत् और अग्नि के लिए (**स्वाहा**) यह आहुति देता हूँ।

ओं विष्णवे स्वाहा॥

मैं (**विष्णवे**) सूर्य के लिए (**स्वाहा**) यह आहुति देता हूँ।

इन मन्त्रों से स्थालीपाक की तीन आहुति देनी। तत्पश्चात् '**भूरग्नये स्वाहा**' आदि व्याहृति आज्याहुति चार देनी।

विशेष—कृष्णपक्ष की रात्रियों के आरम्भ में चन्द्रमा का सम्बन्ध नहीं होता और अमावास्या की रात्रि में चन्द्रमा का सर्वथा अभाव होता है, अतः उस रात्रि के देव विद्युत् और अग्नि हैं।

दर्शेष्टि मनुष्य को एक सुन्दर एवं दिव्य सन्देश देता है। अमावास्या की रात्रि में चन्द्रमा नहीं होता। सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार का साम्राज्य होता है, परन्तु यह चन्द्रमा सदा लुप्त नहीं रहता। अन्धकार समाप्त होता है, धीरे-धीरे चन्द्रमा अपनी कलाओं के साथ उदित होना आरम्भ होता है और पूर्ण प्रभा के साथ चमकने लगता है। ठीक इसी प्रकार कभी-कभी मनुष्य के जीवन में भी अन्धकारमयी रात्रियाँ आ जाती हैं। चारों ओर निराशा और हताशा ही दिखाई देती है। हे मानव! उस समय तू अमावास्या की रात्रि का अवलोकन कर लिया कर। जैसे अमावास्या का तम=अन्धकार दूर

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। (ऋ० ९.८३.१)
जिसने शरीर को नहीं तपाया वह सुख नहीं पा सकता।

होकर चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका के साथ छिटकने लगता है, चहुँ ओर प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार हे मानव! तू उठ, पुरुषार्थ कर! तेरे जीवन की निशा भी समाप्त होकर उसमें उषा की ज्योति जगमगाएगी। निराशा और हताशा के घनघोर बादल दूर होकर आशा और उल्लास की किरणें चमकेंगी।

पौर्णमासेष्टि—पौर्णमासी यज्ञ

पूर्णिमा के दिन अग्रिम मन्त्रों से विशेष आहुतियाँ दें—

ओम् अग्नये स्वाहा।

इस मन्त्र का अर्थ पीछे अमावास्या यज्ञ में हो चुका है।

ओम् अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा।

मैं **(अग्नीषोमाभ्याम्)** अग्नि और सोम=चन्द्रमा के लिए **(स्वाहा)** आहुति देता हूँ।

ओं विष्णवे स्वाहा॥

इस मन्त्र का अर्थ भी अमावास्या यज्ञ में हो चुका है।

विशेष—पौर्णमासेष्टि भी मनुष्य को एक दिव्य प्रेरणा प्रदान करती है। जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब मनुष्य को अपने वैभव—धन-सम्पत्ति, विद्या, बुद्धि, बल आदि का अभिमान हो जाता है। ऐसे अभिमान के पुतलों को पूर्णिमा के दिन अपनी सम्पूर्ण कलाओं से चमकता हुआ चन्द्रमा यह सन्देश देता है कि हे मानव! अपने जीवन में कभी किसी बात पर गर्व मत करना। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होकर अमावास्या की रात्रि में सर्वथा विलीन हो जाता है, इसी प्रकार संसार के वैभव—धन-सम्पत्ति, विद्या और बुद्धि जिनपर तू अभिमान कर रहा है, इनका नाश भी अवश्यम्भावी है।

''जिनके घर में अभाग्य से प्रतिदिन अग्निहोत्र न होता हो वे पक्षयाग अवश्य करें।'' —महर्षि दयानन्द सरस्वती

पितृयज्ञ

अग्निहोत्रविधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे। इसमें जीवित देव, अर्थात् विद्वान्, ऋषि, अर्थात् पढ़ने-पढ़ानेवाले और पितर, अर्थात्

आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्। (अथर्व ५.३०.७)
उन्नत होकर आगे बढ़ना हर जीव (मनुष्य) का धर्म है।

माता-पिता, पितामह-पितामही, प्रपितामह-प्रपितामही आदि वृद्ध, बान्धव तथा ज्ञानी, परम योगियों की जो प्रत्यक्ष विद्यमान हैं, सेवा करनी होती है। इसके दो भेद हैं—एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। यह श्राद्ध और तर्पण आदि कर्म विद्यमान, अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं, उनमें ही घटता है, मृतकों में नहीं।

श्राद्ध और तर्पण जीवितों का ही होता है। श्राद्ध का अर्थ है—जो श्रद्धापूर्वक किया जाए। एक युवक श्रद्धापूर्वक माता-पिता की सेवा करता है, उन्हें भोजन और वस्त्र देता है, परन्तु कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता, यह युवक अपने माता-पिता का श्राद्ध तो कर रहा है, परन्तु तर्पण नहीं। दूसरा युवक अपने माता-पिता पर पाँच सौ रुपया प्रति मास व्यय कर देता है, उनकी किसी भी इच्छा को अपूर्ण नहीं रहने देता, परन्तु मन में हर समय यह सोचता रहता है कि व्यर्थ में मेरे पाँच सौ रुपये प्रति मास व्यय हो जाते हैं, पता नहीं इन्हें मृत्यु कब्र आएगी? यह युवक अपने माता-पिता का तर्पण तो कर रहा है, परन्तु श्राद्ध नहीं।

पितृयज्ञ में जहाँ सम्बन्धी, सगोत्र आदि की सेवा-शुश्रूषा का विधान है, वहाँ उन विशिष्ट विद्वानों की सेवा-सत्कार का भी विधान है जिनसे गृहस्थों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा प्राप्त होती है। वे विशिष्ट विद्वान् निम्न हैं—

१. सोमसदः—जो परमेश्वर की उपासना में स्थित, सोमयज्ञ करनेवाले, सोमवल्ली आदि ओषधियों की विद्या में निपुण और शान्ति आदि गुणवाले हैं, वे 'सोमसदः' कहलाते हैं। आङ्ग्ल भाषा में इन्हें Philosophers कह सकते हैं।

२. अग्निष्वातः—जो ईश्वर, भौतिक अग्नि और विद्युदादि पदार्थों के गुणों को जाननेवाले हैं, वे 'अग्निष्वातः' (Scientists) कहलाते हैं।

३ बर्हिषदः—जो सबसे उत्तम परब्रह्म में स्थिर होकर, शम-दम, सत्यविद्या आदि उत्तम गुणों के व्यवहार में स्थिर हैं, उन्हें 'बर्हिषदः' (Victors) कहते हैं।

४. सोमपाः—जो ऐश्वर्य के रक्षक और सोम महौषधि के रस

रजस्तमो मोप गा मा प्रमेष्ठाः। (अथर्व० ८.२.१)
रजोगुणी तमोगुणी न बन, ताकि मृत्यु से पीड़ित न हो।

का पान करने से रोगरहित तथा ओषधियों के द्वारा जनता के रोगों को हरनेवाले हैं, उन्हें 'सोमपाः' (Physiologists) कहते हैं।

५. हविर्भुजः—जो नित्य अग्निहोत्र करके वायु वा वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते हैं, जो यज्ञशेष खानेवाले तथा जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों का त्याग करके भोजन करनेवाले हैं, वे 'हविर्भुजः' (Sanitarists) कहलाते हैं।

६. आज्यपाः—जो घृत, दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करनेवाले वा विविध ज्ञान-विज्ञानरूप सारभूत विद्या के अध्ययन-अध्यापन द्वारा रक्षा करनेवाले हैं, वे 'आज्यपाः' (Lagislators) कहलाते हैं।

७. सुकालिनः—ईश्वर, धर्म और सत्यविद्या के उपदेश में जिनका समय व्यतीत होता है, अथवा जो काल का सदुपयोग करनेवाले एवं समय को पहचानकर यथोचित कार्य करनेवाले हैं, उन्हें 'सुकालिनः' (Preachers) कहते हैं।

८. यमराजाः—जो पक्षपात को छोड़के सदा दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेवाले न्यायकारी हैं, वे 'यमराज' या न्यायाधीश (Judges) कहलाते हैं।

प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन भोजन करने से पूर्व इन पितरों का श्राद्ध एवं तर्पण करना चाहिए।

बलिवैश्वदेवयज्ञः

बलिवैश्वदेवयज्ञ की विधि निम्न है—

जब भोजन तैयार हो जाए, तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़कर घृतमिष्टयुक्त अन्न लेके, चूल्हे से थोड़ी-सी अग्नि अलग धरके निम्न मन्त्रों से प्रज्वलित अग्नि में आहुति दें—

ओम् अग्नये स्वाहा॥ १॥

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की प्रसन्नता, उसकी आज्ञापालन करते हुए जगत् के उपकार और भौतिक अग्नि के लिए यह आहुति सुहुत हो।

ओं सोमाय स्वाहा॥ २॥

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति। (ऋ० १०.३३.९)
देवों के नियम तोड़कर कोई सौ वर्ष नहीं जी सकता।

सब जगत् के पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करके सबको सुख देनेवाले परमात्मा की आज्ञापालन करते हुए संसार के उपकार के लिए तथा परमेश्वर के रचे जल, चन्द्रमा तथा सोमलता आदि के लिए यह आहुति समर्पित करता हूँ।

ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा॥ ३॥

प्राणियों के जीवन के हेतु, दुःखनाशक परमेश्वर की प्रसन्नता, प्राण-अपान और अन्य वायुओं की पुष्टि के लिए यह आहुति देता हूँ।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥ ४॥

संसार को प्रकाशित करनेवाले ईश्वर के दिव्य गुणों, पृथिव्यादि पंचतत्त्वों, समस्त विद्वानों और प्राणियों के लिए यह आहुति सुहुत हो।

ओं धन्वन्तरये स्वाहा॥ ५॥

जन्म-मरण आदि रोगों का नाश करनेवाले, दुर्गम, दुःखप्रद भवसागर से पार लगानेवाले परमेश्वर की आज्ञापालन करते हुए जगत् के उपकार के लिए, रोगों से छुटकारा दिलानेवाले आयुर्वेदविज्ञानवेत्ता के लिए तथा विद्युत्, मेघ, अग्नि, वर्षा के लिए यह आहुति सुहुत हो।

ओं कुह्वै स्वाहा॥ ६॥

परब्रह्म परमात्मा की संहारिणी शक्ति को स्मरण करते हुए उसकी आज्ञापालन के लिए, जगत् के उपकार के लिए, चन्द्रमा तथा अमावास्येष्टि के लिए यह आहुति समर्पित है।

ओमनुमत्यै स्वाहा॥ ७॥

परमात्मा की पालयित्री शक्ति, अर्थात् ईश्वर की कृपादृष्टि के लिए अथवा सबके हृदय में व्यापक परब्रह्म की आज्ञापालन के लिए, जगत् का उपकार करने के लिए, चन्द्रमा एवं पूर्णमासी के लिए यह आहुति देता हूँ।

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ ८॥

सबके पालनकर्त्ता परमपिता परमात्मा की आज्ञानुसार जगत् के उपकार के लिए, सन्तानों की उत्तम प्रकार से रक्षा करनेवाले पिता-

शिवा: नः सख्या सन्तु भ्रात्रा। (ऋ० ४.१०.८)
भाइयों की मित्रता कल्याण-प्रद होती है।

पितामह आदि की प्रसन्नता एवं अन्न, मेघ, सूर्य आदि के लिए यह आहुति सुहुत हो।

ओं द्यावापृथिवीभ्याᳬ स्वाहा॥ ९॥

द्युलोक और पृथिवीलोक के पदार्थों को रचने के साथ सब जीवों को सुख देनेवाले परमेश्वर की आज्ञानुसार जगत् का उपकार करने के लिए द्यौ तथा पृथिवी, अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार का सुख प्राप्त करने के लिए तथा अग्नि और भूमि से उपकार लेने के लिए यह आहुति देते हैं।

ओं स्विष्टकृते स्वाहा॥ १०॥

इष्टसुख देनेवाले परमेश्वर की आज्ञापालन करने के लिए, जगत् के उपकार के लिए, परमेश्वर के रचे सृष्टिक्रमरूप यज्ञ के लिए, कार्यों को पूर्ण करने में सहायता देनेवाले मित्रों की प्रसन्नता के लिए यह आहुति देता हूँ।

इन मन्त्रों से आहुति देने के पश्चात् बलिदान करें, अर्थात् थाली अथवा भूमि पर पत्ता रखके निम्न मन्त्रों से पूर्वादि दिशाओं में यथाक्रम भाग रक्खें—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः॥ १॥ इससे पूर्व दिशा में।

सर्वैश्वर्ययुक्त परमेश्वर और उसके अनुकरणीय गुणों के प्रति आदरभाव से नमन करते हैं, राजा के उसके अनुगामी मन्त्री से लेकर चपरासी तक के हम ऋणी हैं, अतः उनके निमित्त अन्न का भाग निकालते हैं, हम प्राणिमात्र को आदरपूर्वक अन्न प्रदान करते हैं॥ १॥

ओं सानुगाय यमाय नमः॥ २॥ इससे दक्षिण दिशा में।

पक्षपातरहित, सत्यन्याय करनेवाले परमेश्वर और उसकी सृष्टि में सत्यन्याय करनेवालों का हम श्रद्धा से आदर करते हैं। न्यायाधीश और उसके अनुयायी पञ्च आदि का हम सत्कार करते हैं। मृत्यु और उसके अनुचर रोग आदि के लिए (**नमः**) वज्रप्रहार, अर्थात् उनका निवारण कर दीर्घायुष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं॥ २॥

ओं सानुगाय वरुणाय नमः॥ ३॥ इससे पश्चिम दिशा में।

विद्यादि उत्तम गुणों से युक्त, सबसे उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्तजनों के प्रति हम नमन करते हैं। राजसभा में धर्माध्यक्ष

प्रियाः श्रुतस्य भूयासम्। (अथर्व० ७.६१.१)
हम सब वेद-प्रेमी बनें।

और उसके अनुयायियों का आदर-सत्कार करते हैं। आकाश, समुद्रादि देवों के लिए हवि प्रदान करते हैं। नीर-क्षीर-विवेकी, सत्य का ग्रहण तथा असत्य का परित्याग करनेवाले सज्जनों और उनके मित्रों के लिए अन्न=भोजन की व्यवस्था करते हैं॥ ३॥

ओं सानुगाय सोमाय नमः॥ ४॥ इससे उत्तर दिशा में।

पुण्यात्माओं को आनन्दित करनेवाले परमात्मा और पुण्यात्मा लोगों के लिए हम श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं। शान्ति स्थापित करनेवाले सेनापति और उसके अनुगामी सैनिकों के लिए भोजन आदि के प्रबन्ध की व्यवस्था तथा चन्द्रमा एवं वनस्पति के लिए **(नमः)** हवि, अग्निहोत्र करते हैं, जिससे अन्तरिक्ष की शुद्धि और अमृतमय जल की प्राप्ति हो॥ ४॥

ओं मरुद्भ्यो नमः॥ ५॥ इससे द्वार पर रखें।

महाप्राण ईश्वर के लिए नमस्कार और ईश्वर के आधार से सकल विश्व को धारण करने तथा गति देनेवाले प्राण की, जिसके रहने से जीवन और निकल जाने से मृत्यु होती है, रक्षा के लिए सदा प्रयत्न करते हैं। यम-नियमों का पालन करनेवाले तपस्वी, वानप्रस्थी, मुनियों को भोजन आदि प्रदान, द्वारपालों का आदर-सत्कार और वायु को सुगन्धित करने का प्रयत्न करते हैं॥ ५॥

ओं अद्भ्यो नमः॥ ६॥ इससे जल के पास रखें।

जल के समान शान्तिप्रदाता तथा सर्वव्यापक परमेश्वर के लिए नमस्कार और जलविभाग के अध्यक्ष नहर आदि बनानेवाले तथा जल में निवास करनेवाले प्राणियों के लिए भोजन प्रदान करते हैं॥ ६॥

ओं वनस्पतिभ्यो नमः॥ ७॥ मूसल और ऊखल के पास रखें।

सब लोकों के पालक ईश्वर और उसके गुणों के प्रति श्रद्धा से नमन करते हैं। जिनसे वर्षा अधिक होती है और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है, उन वनों का संरक्षण करते हैं तथा सूर्य, मेघ और वनस्पति के लिए **(नमः)** अन्न=हवि प्रदान करते हैं, जिससे वृष्टि अधिक हो॥ ७॥

ओं श्रियै नमः॥ ८॥ इससे ईशान दिशा में रखें।

जो परमेश्वर सबसे सेवा करने योग्य तथा जिसने जगत् की

यतेमहि स्वराज्ये। (ऋ० ५.६६.६)
हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें।

शोभा उत्पन्न की है, उस परमात्मा को श्रद्धा और आदरपूर्वक नमन करते हैं। उस परमात्मा की उपासना से राज्यश्री की प्राप्ति के लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ करते हैं तथा शिल्पियों के लिए अन्न-भाग निकालते हैं॥ ८॥

ओं भद्रकाल्यै नमः॥ ९॥ इससे नैर्ऋत्य दिशा में रखें।

जो परमात्मा का इहलौकिक सुख और पारलौकिक कल्याण=मोक्ष प्राप्त करानेवाला सामर्थ्य है, हम श्रद्धापूर्वक उसका आश्रय लेते हैं। जीवों को सुलाकर उनका कल्याण करनेवाली रात्रि का आश्रय लेते हैं, जिससे स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हो॥ ९॥

ओं ब्रह्मपतये नमः॥ १०॥

ओं वास्तुपतये नमः॥ ११॥ इनसे घर के मध्य में रखें।

सर्वविद्याविज्ञ तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर की भक्ति और विद्या-प्रचार के लिए प्रयत्न करना चाहिए। वेदज्ञानी और योगी के लिए भोजन आदि की सुव्यवस्था कर उनका आदर-सत्कार करना चाहिए॥ १०॥

संसार के स्वामी तथा सर्वाधार ईश्वर को नमस्कार हो। गृहपति का आदर-सत्कार करना चाहिए तथा वास्तु-विद्या-विशारदों, यन्त्रकारों (Engineers) को पुरस्कार और प्रोत्साहन देना चाहिए॥ ११॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ १२॥

ओं दिवाचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः॥ १३॥

ओं नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः॥ १४॥ इनसे ऊपर दिशा में।

संसार को प्रकाशित करनेवाले ईश्वर के सब गुणों के लिए श्रद्धापूर्वक नमन करना और उन्हें अपने जीवन में धारण करना चाहिए। विद्वान् ब्राह्मणों का सम्मान और संसार के सब प्राणियों के लिए भोजन प्रदान करना, सब भौतिक पदार्थ और उनके गुणों का सद्विनियोग करके सारे संसार को सुख पहुँचाना चाहिए॥ १२॥

विशेष—उपर्युक्त ग्यारह मन्त्रों में परमात्मा के पृथक्-पृथक् गुण दर्शाकर इस बारहवें मन्त्र में ईश्वर के सब गुणों को नमस्कार किया गया है।

यजाम देवान् यदि शक्नवाम्। (ऋ० १।२७।१३)
हम यथाशक्ति देवों का सत्कार करें।

दिन में विचरण करनेवाले पशु-पक्षियों, चाण्डाल आदि को भी द्रवीभूत होकर अन्न देना चाहिए। पञ्चतत्त्वों के लिए हवि=यज्ञाहुति समर्पित करनी चाहिए, जिससे सभी भूतों की शुद्धि हो॥ १३॥

रात्रि में विचरनेवाले पक्षियों और जीवों के लिए अन्न देना और उनसे उपकार लेना चाहिए तथा उन्हें सुख देना चाहिए। रात्रि में विचरण करनेवाले प्रहरीगण तथा निशा-निरीक्षकों को उचित सम्मान और पुरस्कार देने चाहिएँ। चोर, घातक, सिंह, व्याघ्र आदि का प्रतिबन्ध करना चाहिए॥ १४॥

विशेष—दिन और रात्रि में भ्रमण करनेवाले जीव दो प्रकार के होते हैं—एक मनुष्यों के लिए लाभदायक हैं और दूसरे हानिकारक। इनके साथ प्रयुक्त **'नमः'** शब्द के भी दो ही अर्थ होंगे—पहला अन्न और दूसरा दूरीकरण। यथा मक्खी, बर्र आदि दिवाचरों का दूरीकरण तथा काक, श्वान=कुत्ता आदि को अन्न-प्रदान। मच्छर आदि निशाचरों का निवारण और बिल्ली आदि के अन्न की व्यवस्था करनी उचित है।

ओं सर्वात्मभूतये नमः॥ १५॥ इससे पृष्ठ भाग में।

सब चराचर जगत् में व्यापक परमात्मा के लिए हम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमन करते हैं। ज्ञानी, मुमुक्षु, प्रभु-विवेकीजनों का आदर-सत्कार करते हैं, सब प्राणियों के प्रति दया का व्यवहार करते हैं॥ १५॥

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥ १६॥ इससे दक्षिण।

माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पुत्र, भृत्य=नौकर, कुटुम्बी आदि का अन्न आदि द्वारा सत्कार करते हैं॥ १६॥

यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आ जाए तो उसी को देना, नहीं तो अग्नि में धर देना।

यह नित्य श्राद्ध है।

इसके पश्चात् घृतसहित लवणान्न लेके—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥ —मनु० ३.९२

कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि—इन छह नामों से छह भाग पृथिवी पर धरे और वे भाग जिस-जिसके हैं,

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते। (ऋ० १.४०.१)
हे वेद रक्षको! जागो, उठो।

उसे-उसे खिला दे—

१. **श्वभ्यो नमः**—कुत्तों को अन्न।

२. **पतितेभ्यो नमः**—पतितों को अन्न।

३. **श्वपग्भ्यो नमः**—चाण्डालों के लिए अन्न।

४. **पापरोगिभ्यो नमः**—पापरोगियों के लिए अन्न।

५. **वायसेभ्यो नमः**—कौओं के लिए अन्न।

६. **कृमिभ्यो नमः**—कीड़े-मकोड़ों के लिए अन्न।

यह वेद और मनुस्मृति के अनुसार बलिवैश्वदेवयज्ञ की विधि पूरी हुई।

अतिथियज्ञ

अतिथियज्ञ पाँचवाँ है। इसका नाम नृयज्ञ भी है। इसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है। धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना 'अतिथियज्ञ' कहाता है।

जो मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपटादि दोषरहित, सत्योपदेशक, परम योगी, संन्यासी, नित्य भ्रमण करके विद्या तथा धर्म का प्रचार और अविद्या तथा अधर्म की निवृत्ति सदा करते रहते हैं, वे 'अतिथि' कहलाते हैं।

जिसके आने-जाने की कोई भी तिथि या दिन निश्चित न हो, अकस्मात् स्वेच्छा से कहीं से आये और चला जाए, अर्थात् नित्य भ्रमण करनेवाला संन्यासी भी 'अतिथि' कहलाता है।

समय पाके गृहस्थ और राजा आदि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य होते हैं। अतिथियज्ञ की विधि यह है—

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ १॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथाऽस्त्विति॥ २॥ —अथर्व० १५.११.१,२

जब अकस्मात् कोई विद्वान् अतिथि गृहस्थों के घर प्राप्त हो,

नास्य क्षीयन्त ऊतयः। (ऋ० ६.४५.३)
ईश्वर की रक्षाएँ कभी कम नहीं पड़तीं।

तब उसको गृहस्थ—

१. अत्यन्त प्रेम से उठकर उसे उत्तम आसन पर बैठाए।

२. पश्चात् उससे पूछे—ब्रह्मन्! कल आपने कहाँ निवास किया था?

३. ब्रह्मन्! जल आदि पदार्थ, जो आपको अपेक्षित हों, ग्रहण कीजिए।

४. हे विद्वन्! जिस प्रकार से आपको प्रसन्नता हो, वैसा ही हम लोग करेंगे। जो पदार्थ आपको प्रिय हो, उसकी आज्ञा कीजिए, जिस प्रकार से आपकी कामना पूर्ण हो, वैसी आपकी सेवा करेंगे, जिससे आप और हम लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक सेवा और सत्सङ्गपूर्वक विद्या-वृद्धि से सदा आनन्द में रहें।

५. पश्चात् उससे प्रार्थना करे—हे विद्वन्! हमें अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए, जिससे हमारे इष्ट-मित्र सब आपके उपदेश से विज्ञानयुक्त हों और सदा प्रसन्न होके आपको भी सत्यप्रेम और सेवा से सन्तुष्ट रक्खें।

इस प्रकार उनका सत्सङ्ग कर उनसे उस ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करें जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो। अपना चाल-चलन भी उन उपदेशों के अनुसार बनावें।

परन्तु मिथ्या-उपदेशक, स्वार्थी, पाखण्डी, वेदनिन्दक, विडालवृत्ति, शठ, कुतर्की, बगुलाभगत, वैरागी, खाकी, नागे साधु, दुराग्रही, वेदविरोधी मनुष्यों का तो वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए।

इन पाँच महायज्ञों को स्त्री-पुरुष प्रतिदिन करते रहें।

ब्रह्म वर्म ममान्तरम्। (अथर्व० १.१९.४)
ईश्वर वा ज्ञान ही मेरा आन्तरिक कवच है।

शान्तिपाठः

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ —यजुः० ३६।१७

शान्ति कीजिए प्रभु त्रिभुवन में। शान्ति कीजिए.......
जल में थल में और गगन में,
अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में।
ओषधि वनस्पति वन उपवन में,
सकल विश्व में जड़ चेतन में। शान्ति कीजिए.......
ब्राह्मण के उपदेश वचन में,
क्षत्रिय के द्वारा होवे रण में।
वैश्यजनों के होवे धन में,
और शूद्र के हो चरणन में। शान्ति कीजिए.......
शान्ति राष्ट्र-निर्माण सृजन में,
नगर-ग्राम में और भवन में।
जीवमात्र के तन में मन में,
और जगति के हो कण-कण में।
शान्ति कीजिए प्रभु त्रिभुवन में॥

वैदिक-विनय

ओम् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ —ऋ० ९.६३.५

हे प्रभो! हम तुमसे वर पावें,
सकल विश्व को आर्य बनावें।
फैलें सुख-सम्पति फैलावें,
आप बढ़ें, तव राज्य बढ़ावें।

अशितावत्यतिथावश्नीयात्। (अथर्व० ९.६(३).८)
अतिथि को खिला कर ही स्वयं भोजन करें।

वैर-विघ्न को मार भगावें,
प्रीति-नीति की रीति चलावें।
हे प्रभु! हम तुमसे वर पावें॥

ओम् असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमयेति। —बृहदारण्यकोपनिषद् १.३.२८

हों असत् से दूर भगवन्! सत्य का वरदान दो,
दूर कर द्रुत तिमिर भगवन्! शुभ्र ज्योति-विहान दो।
मृत्यु-बन्धन को हटा, अमरत्व हे भगवान् दो,
प्रकृति-पाशों से छुड़ा, आनन्द-मधु का पान दो॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सबका भला करो भगवान्, सबपर दया करो भगवान्।
सबपर कृपा करो भगवान्, सबका सब विधि हो कल्याण॥
हे ईश! सब सुखी हों, कोई न हो दुखारी,
सब हों नीरोग भगवन्! धन-धान्य के भण्डारी।
सब भद्र-भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों,
दुखिया न कोई होवे सृष्टि में प्राणधारी॥

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय,
यह अभिलाषा हम सबकी भगवन् पूरी होय।
विद्या-बुद्धि-तेज-बल, सबके भीतर होय,
दूध-पूत-धन-धान्य से वंचित रहे न कोय।
आपकी भक्ति प्रेम से मन होवे भरपूर,
राग-द्वेष से चित्त मम कोसों भागे दूर।
मिले भरोसा नाम का हमें सदा जगदीश,
आशा तेरे धाम की बनी रहे मम ईश।
पाप से हमें बचाइए करके दया दयाल,
अपना भक्त बनायके सबको करो निहाल।
दिल में दया-उदारता मन में प्रेम अपार,
हृदय में धैर्य-वीरता सबको दो करतार।

सिंहाइव नानदति प्रचेतसः। (ऋ० १.६४.८)
ज्ञानी पुरुष सिंह की भाँति गरजते हैं।

हाथ जोड़ विनती करूँ सुनिए कृपानिधान,
साधु-संगत-सुख दीजिए, दया-नम्रता दान॥

ओम् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

—यजुः० १९.९

हे तेजवन्त भगवन् मुझमें भी तेज भर दो,
ब्रह्माण्ड वीर्य! मुझको तुम वीर्यवान् कर दो।
बलवीर्य के विधायक! मुझको बली बनाओ,
हे ओज के अधीश्वर! निज ओज से सजाओ।
पुरुषत्व रोष पावन, सहने की शक्ति दे दो,
अपने सभी गुणों से परिपूर्ण नाथ कर दो॥

ओं तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण॥

—यजुः० ३.१७

देह के रक्षक हो अग्ने! मेरी रक्षा कीजिए,
आयु के वर्धक हो अग्ने! मुझको आयुष दीजिए।
तेज के दाता हो अग्ने! तेज मुझको दीजिए,
न्यूनता हो देह में जो, पूर्ति उसकी कीजिए॥

ईश्वर-स्तोत्र

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

—तैत्तिरीयोपनिषद् ९.१

भगवन्! आज विपद् का मारा मैं तेरे ढिंग आया हूँ,
जीवन के संग्राम-क्षेत्र में अगणित ठोकर खाया हूँ।
ओज-तेज-बल-वीर्य ज्ञान-गुण से हमको मण्डित कीजे,
साम्यभाव, सुन्दर समाज-सुखदायक सत्संगति दीजे॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते। (ऋ० ९.७३.३)
पवित्रता के इच्छुक वेद-ज्ञान का सहारा लें।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ —अथर्व० १०.८.१

जो भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकालों और सबका स्वामी होकर कालबन्धन से ऊपर विराजमान है, जिसमें दुःख लेशमात्र भी नहीं है, अर्थात् जो आनन्द से परिपूर्ण है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए हमारा नमस्कार है।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ —अथर्व० १०.७.३२

भूमि जिसके पाँव तथा यथार्थज्ञान का साधन है, अन्तरिक्ष जिसके उदर-तुल्य है और जिसने सबसे ऊपर सूर्य की किरणों से प्रकाशित द्युलोक को सिर के समान बनाया है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए हमारा नमस्कार है।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ —अथर्व० १०.७.३३

जिसने सूर्य को नेत्र-स्थानीय बनाया है और जो चन्द्रमा को नये-नये रूपों में रचता है, जिसने मुख-स्थानीय अग्नि को उत्पन्न किया है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म को हमारा नमस्कार हो।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ —अथर्व० १०.७.३४

जिसने ब्रह्माण्ड की वायु को प्राण-अपान, प्रकाशक-किरण को चक्षु और दस दिशाओं को सब व्यवहार सिद्ध करनेवाली बनाया है, अनन्त विद्यायुक्त, सब मनुष्यों के इष्टदेव उस ज्येष्ठ ब्रह्म को निरन्तर हमारा नमस्कार है।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ –यजुः० ३६.२२

हे परमेश्वर! जगत् की रचना और पालन के निमित्त आप जिस-जिस देश में चेष्टा करते हो, उस-उस देश से हमें अभय कर दो। सब दिशाओं में आपकी जो प्रजा और पशु हैं उनसे भी हमें भयरहित कर देवें; हमसे उनको सुख और हमसे भय न हो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थ आपके अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त करें।

उत्क्रामातः पुरुष मावपत्थाः। (अथर्व० ८.१.४)
हे पुरुष! तू ऊपर ही उठ, नीचे मत गिर!

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥

नमस्ते निराकार निर्गुण निरूपम्,
नमस्ते शिवं सत्य-सुन्दरस्वरूपम्।
नमस्ते अगोचर अगम ओजदायक,
नमस्ते निरंजन निगम-नीतिदायक।
नमस्ते महेश्वर महा मोक्षदाता,
नमस्ते विभो विश्वव्यापी विधाता।
नमस्ते सदा सच्चिदानन्द स्वामी,
नमस्ते नियन्ता 'भवानी' नमामि॥

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥

हे वन्दनीय ईश्वर! तेरी शरण में आया,
तू है स्वयं प्रकाशित, तेरी त्रिलोक माया।
जग के तुम्हीं जनक हो, पालक, विनाशकारी,
हे नाथ! अब दया कर सुधि बेगि लो हमारी॥

भयानां भयं भीषणं भीषणानां, गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैःपदानां नियन्तृ त्वमेकं, परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥

भीषण तुझसे भीत और भय भी भय खावे,
जीवन को गतिशील रसज्ञ पवित्र बनावे।
सर्वोपरि सर्वेश सच्चिदानन्द स्वरूपम्,
रक्षण के रखवार सभी में दिव्य अनूपम्॥

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

सुमिरन, भजन, साधना द्वारा तुमसे नेह लगाऊँ,
घट-घट-व्यापी की छाया में श्रेय मार्ग पर जाऊँ।
एकमात्र अवलम्ब सभी का है तू आश्रयदाता,
तेरे नाम निगम-नौका से भव-सागर तर जाता॥

इन्द्राय पवते मदः। (ऋ० ९.६२.१४)
ईश्वर मनुष्य के लिए आनन्द वर्षाता है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

मात तुही गुरु तात तुही, मितभ्रात तुही धन-धान्य हमारो,
ईश तुही जगदीश तुही, मम शीश तुही प्रभु राखनहारो।
राव तुही उमराव तुही, सद्भाव तुही प्रभु राखनहारो,
सार तुही करतार तुही, घरबार तुही परिवार हमारो॥

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुवन्ति दिव्यैः स्तवैः
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः॥

ब्रह्मा, वरुण, रुद्र, मारुत सब जिसकी गाथा गाते,
वेद और उपनिषद् कथा-कीर्तन से नहीं अघाते।
मानस-दर्शन के हित जिसका योगी ध्यान लगाते,
उसी देव अधिनायक को हम सादर शीश नवाते॥

मेरी चाही करन की जो है तुमरी चाह,
तो अपनी चाही करो, यह है मेरी चाह।
मेरी चाहें हों वही जो है तुमरी चाह,
तुमरी अनचाही कभी मत हो मेरी चाह।
तुमरी चाही में प्रभो हैं मेरा कल्याण,
मेरी चाही मत करो, मैं सेवक अनजान॥

प्रभु आपकी मैं हूँ शरण, निज चरण सेवक कीजिए,
मैं कुछ नहीं हूँ माँगता, जो आप चाहें दीजिए।
सिर-आँख से मंजूर है सुख दीजिए दुःख दीजिए,
जो होय इच्छा कीजिए, मत दूर दर से कीजिए॥

* * *

हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीर व्रतधारी बनें॥

* * *

एषः वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियः। (अथर्व० ९.६(३).७)
अतिथि वही है जो वेद का विद्वान् हो।

द्विज वेद पढ़ें, सुविचार बढ़ें, बल पाय चढ़ें सब ऊपर को,
अविरुद्ध रहें, ऋजुपंथ गहें, परिवार कहें वसुधा भर को।
ध्रुव धर्म धरें, परदुःख हरें, तन त्याग तरें भवसागर को,
दिन फेर पिता, वर दे सविता, हम आर्य करें जगती भर को॥

भोजन के समय की प्रार्थना

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

—यजुः० ११.८३

अन्नपते भगवान्! हमें तुम अन्न सदा प्रदान करो,
अन्नदान करनेवालों का प्रभो! सदा कल्याण करो।
रोगरहित वा पौष्टिक अन्न से ईश हमें बलवान् करो,
दोपायों वा चौपायों को, अन्न सदा प्रदान करो॥

गृहस्थ-धर्म पञ्चक

[पारिवारिक यज्ञों में इन मन्त्रों की विशेष आहुतियाँ दें]।

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ १॥

हे गृहस्थो! तुम सब समान हृदय रक्खो। एक-दूसरे को ऐसे चाहो जैसे गाय सद्यःजात बछड़े को प्यार करती है॥ १॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्॥ २॥

पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता में श्रद्धा रक्खे। पत्नी मधुरभाषिणी हो, पति शान्त और मधुर व्यक्तित्ववाला हो॥ २॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ ३॥

भाई, भाई के साथ, बहिन, बहिन के साथ तथा भाई-बहिन परस्पर द्वेष न करें। आपस में सदा ही सुखदायक, कल्याणकारी वाणी बोलें॥ ३॥

मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्। (अथर्व० ६.३२.३)
आपस में लड़नेवाले (परिवार व राष्ट्र) मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽ ग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ४॥

हे गृहस्थो! तुम्हारे जलपान, खानपान एवं यान आदि समान हों। तुम्हें चक्र के आरों की भाँति पारस्परिक कल्याण, सद्भाव और उन्नति के धर्मरूप केन्द्र से जोड़ता हूँ॥४॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥ ५॥

हे गृहस्थो! मैं तुम्हें धर्मकृत्य के सेवन के साथ एक-दूसरे के उपकार में नियुक्त करता हूँ। सायं-प्रातः प्रेमपूर्वक मिला करो। (परस्पर यथायोग्य अभिवादन किया करो)। तुम्हारा शुद्धभाव सदा बना रहे॥५॥ —अथर्व०-काण्ड ३। सूक्त ३०। मन्त्र १,२,३,६,७

ईशोपाख्यान-सूक्त

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २॥
असुर्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३॥
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽ आप्नुवन्पूर्वमर्शत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ ४॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५॥
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ६॥
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः ॥ ७॥

मित्रस्य यायां पथा। (ऋ० ५.६४.३)
हम मित्रता के मार्ग पर चलें (झगड़ें नहीं)।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽ उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥ ९ ॥
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥
अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽ उ विद्यायाꣳ रताः ॥ १२ ॥
अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥ १५ ॥
अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥

॥ इति यजुर्वेदसंहितायाः चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

यः पोता स पुनातु मा। (यजुः० १९.४२)
जो पवित्र है, वह मुझे पवित्र करे।

ईश-प्रार्थना

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥१॥

—यजुः० ३६.९

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे अद्वितीयानुपम, जगदादिकारण! हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्! हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार! हे सनातन, सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन्! हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक! हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक! अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक! हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक! हे अधमोद्धारक, पतितपावन मान्यप्रद! हे विश्वविनोदक, विनय-विधिप्रद, विश्वासविलासक! हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद! हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक! हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक! हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक! हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, धर्म-सुप्रापक! हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्धक, ज्ञानप्रद! हे सन्ततिपालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक! हे पुरुषार्थपालक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद! हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताडन, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक! हे परमेश, परेश, परमात्मन् परब्रह्मन्! हे जगदानन्दक परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य! हे अजरामृताभयनिर्बन्धानादे! हे अप्रतिम-प्रभाव-निर्गुणातुल-विश्वाद्य-विश्ववन्द्य-विद्वद्विलासकेत्याद्यनन्त-विशेषणवाच्य! हे मंगलप्रदेश्वर! आप सर्वथा सबके निश्चित 'मित्र' हो। हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो। हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर! आप 'वरुण' अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, आप हमको परमसुखदायक हो! हे पक्षपात-रहित, धर्मन्यायकारिन्! आप 'अर्यमा' (यमराज) हो, हमारे लिए न्याययुक्त सुख देनेवाले आप ही हो। हे परमैश्वर्यवान् 'इन्द्र' ईश्वर! आप हमको शीघ्र परमैश्वर्ययुक्त स्थिर सुख दीजिए! हे महाविद्य, वायोऽधिपते, 'बृहस्पते' परमात्मन् हम

उद्वयं तमसस्परि। —यजुः० २०।२१
हम अन्धकार से ऊपर उठें।

लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो। हे सर्वव्यापक, अनन्तपराक्रमेश्वर 'विष्णो'! आप हमको अनन्त सुख देओ। जो कुछ माँगेंगे सो आपसे ही हम लोग माँगेंगे। सब सुखों के देनेवाला आपके बिना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय, सबसे बड़े पिता को छोड़कर नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते, सो आप सदैव हमको सुख देंगे, यह हम लोगों का दृढ़-निश्चय है।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव॥ —यजुः० ३०.३

हे सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमन्, सर्वान्तर्यामी जगत्-पिता! हे अजर, अमर, अभय, शुद्ध, पवित्र, सृष्टिकर्त्ता परमात्मन्! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारक, शुभ गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है वह हमको प्राप्त कीजिए।

हे परमपितः! इस संसार-सागर में चारों ओर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि बुराइयाँ बड़े वेग से आक्रमण करती रहती हैं, हम बचने का प्रयत्न करके भी बुराइयों और व्यसनों में फँस जाते हैं। हे देव! हमपर कृपा करके हमें बल, शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करो, जिससे हम दुर्व्यसनों को अपने से दूर रखते हुए ठीक मार्ग पर चल सकें। आप हमारे पिता हैं, माता भी आप ही हैं। जैसे माता अपने बच्चे को यत्न करता देखकर अङ्गुली पकड़कर उसे सहारा देती है और फिर अपनी छाती से लगा लेती है, आप हम बच्चों को भी उसी प्रकार सहारा देकर अपनी पवित्र गोद में बैठने का अधिकारी बना दीजिए, जिससे हमारा यह मानव-जन्म सफल हो सके। हम आपकी कृपा से हे नाथ! सब प्रकार के उत्तम पदार्थ, धन-धान्य, सुख-ऐश्वर्य को प्राप्त करके सच्चे मार्ग पर चलते हुए आपको प्राप्त करें, मुक्ति को प्राप्त करें।

हे दयानिधे! आपकी अपार दया से हम अन्धकार से प्रकाश

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवान्। —अथर्व० १२।३।५३
उत्तम कर्म कर और देवता=फ़रिश्ता बन जा।

तथा अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ते हुए, सत्कर्म करते हुए, यज्ञमय जीवन बनाकर आपकी शरण में, आपकी छत्र-छाया में रहें। हम आपके सच्चे पुत्र बनकर आपके गुणों को धारण करते हुए हे देव! अपना जीवन धन्य बनाकर आपका आशीर्वाद प्राप्त करें। ज्योतियों की ज्योति, हे देव! आपसे प्रकाश प्राप्त करके तथा अन्यों को सुपथ पर चलाते हुए सबका कल्याण कर सकें। हे ज्ञान के भण्डार प्रभो! हम आपके वेद-ज्ञान को प्राप्त कर घर-घर में पवित्र वेद का प्रचार-प्रसार कर सकें, हमें ऐसी मेधा बुद्धि एवं शक्ति प्रदान कीजिए।

निशागीत (मानस शिवसंकल्प प्रार्थना)

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

प्रभो! जागते हुए सदा जो दूर-दूर तक जाता है,
सोते में भी दिव्य शक्तिमय कोसों दौड़ लगाता है।
दूर-दूर वह जानेवाला तेजों का भी तेज-निधान,
नित्ययुक्त शुभ-संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्॥

ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जिसके द्वारा बुद्धिमान् सब नाना करतब करते हैं,
सत्कर्मों को करें मनीषी, वीर युद्ध में बढ़ते हैं।
पूजनीय अतिशय जिसका है प्रजावर्ग में अद्भुत मान,
नित्ययुक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्॥

ओं यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जिसमें धैर्य, शक्ति चिन्तन की तथा ज्ञान रहता भरपूर,
प्राणिमात्र में अमृतमय है और प्रकाश का बहता पूर।
जिसके बिना नहीं चलता है निश्चय कोई कार्यविधान,
नित्ययुक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्॥

मा पणिर्भूः। —ऋ० १।३३।३
तू कृपण=कंजूस मत बन।

ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

अमर तत्त्व जो तीन काल का भेद यथावत् पाता है,
बुद्धि, ज्ञान की पाँच इन्द्रियाँ, अहंकार से नाता है।
सात हवन करनेवालों का जिसमें फैला यज्ञ-विधान,
नित्ययुक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

चार वेद निगमागम सारे, ईश-ज्ञान के सुन्दर स्रोत,
रथ के पहिये में ज्यों आरे वैसे रहते ओत-प्रोत।
जंगम जग का चित्त अचल हो जिसमें रहता निष्ठावान्,
नित्ययुक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

मानव-जन को बाँध डोर से इधर-उधर ले-जाता है,
चतुर सारथी ज्यों घोड़ों को उत्तम चाल चलाता है।
हृदय-देश में सदा विराजे जो अतिगामी अजर महान्,
नित्ययुक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्॥

शिवो भूः। —ऋ० ७।१९।१०
हे जीवात्मन्! तू सबका कल्याण करनेवाला बन।

अथ नामकरणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

_अत्र प्रमाणम्_—नाम चास्मै दद्युः॥ १॥
घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम्॥ २॥
चतुरक्षरं वा॥ ३॥
द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः॥ ४॥
युग्मानि त्वेव पुंसाम्॥ ५॥
अयुजानि स्त्रीणाम्॥ ६॥
अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ
विदध्यातामोपनयनात्॥ ७॥ —इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु॥

दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति—द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्, अयुजाक्षरमाकारान्तꣳ स्त्रियै। शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है॥

नामकरण अर्थात् जन्मे हुए बालक का सुन्दर नाम धरे।

नामकरण का काल—जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ग्यारहवें वा एक सौ एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे।

जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट-मित्र, हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान—बालक का पिता और ऋत्विज करें।

पुनः पृष्ठ ३९-७० में लिखे प्रमाणे सब मनुष्य **ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण** और सामान्य प्रकरणस्थ सम्पूर्ण विधि करके **आघारावाज्यभागाहुति** ४ चार और १८ पर लिखी **व्याहृति आहुति** ४ चार और पृष्ठ ८१-८३ पर लिखे प्रमाणे (**त्वन्नो अग्ने०**) इत्यादि आठ मन्त्रों से ८ आठ आहुति, अर्थात् सब मिलाके १६

अथो श्वा अस्थिरो भवन्। —अथर्व० २०।१३०।१९
अस्थिर मनुष्य कुत्ते के समान हो जाता है।

घृताहुति करें।

तत्पश्चात् बालक को शुद्ध [जल से] स्नान करा, शुद्ध वस्त्र पहनाके उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिणभाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रखके बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तरभाग में पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे। पश्चात् जो उसी संस्कार के लिए कर्त्तव्य हो, उस प्रथम प्रधानहोम को करे। पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब शाकल्य सिद्ध कर रक्खे। उसमें से प्रथम घी का चमचा भरके—

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥

इस मन्त्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि, जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से ४ चार आहुति देनी, अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से, अर्थात् तिथि, नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोलके ४ चार घी की आहुति देवे। जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तो—

ओं प्रतिपदे स्वाहा। ओं ब्रह्मणे स्वाहा। ओम् अश्विन्यै स्वाहा। ओम् अश्विभ्यां स्वाहा॥

तत्पश्चात् पृष्ठ ७९ में लिखी हुई **स्विष्टकृत्-मन्त्र** से एक आहुति और पृष्ठ ७८ में लिखे प्रमाणे ४ चार **व्याहृति** आहुति दोनों मिलके पाँच आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका-द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो
वीरैः सुपोषः पोषैः॥ —यजुः० ७।२९

अग्ने तन्वं जुषस्व। —ऋ० ३।१।१
हे ज्ञानिन्! तू अपनी आत्मा से प्रीति कर।

ओम् कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ॥

जो यह "असौ" पद है इसके स्थान में बालक का ठहराया हुआ नाम, अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का, घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण, अर्थात् पाँचों वर्गों के दो-दो अक्षर छोड़के तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और य र ल व—ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें।

जैसे—देव अथवा जयदेव। ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक, तीन वा पाँच अक्षर का नाम रक्खे—श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि। नामों को प्रसिद्ध बोलके, पुनः "**असौ**" पद के स्थान में बालक का नाम धरके पुनः (**ओम् कोऽसि०**) ऊपर लिखित मन्त्र बोलना।

ओं स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवें। इस प्रमाणे बालक का नाम रखके संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुनाके पृष्ठ ९३-९४ में लिखे प्रमाणे **महावामदेव्य गान** करें।

तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर-सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ४०-४३ में लिखे प्रमाणे परमेश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना करके बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः।"

हे बालक! तू आयुष्मान्, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् हो॥

यजस्व वीर। —ऋ० २।२६।२
हे वीर। तू यज्ञ कर।

अथ चूडाकर्मसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

यह आठवाँ संस्कार 'चूडाकर्म' है, जिसको केशछेदन-संस्कार भी कहते हैं। इसमें आश्वलायनगृह्यसूत्र का मत ऐसा है—

तृतीये वर्षे चौलम्॥ १॥

उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति॥ २॥

इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी है—

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्॥

इसी प्रकार गोभिलीयगृह्यसूत्र का भी मत है॥

यह चूडाकर्म, अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म के तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना। उत्तरायणकाल शुक्लपक्ष में जिस दिन आनन्द-मङ्गल हो, उस दिन यह संस्कार करें।

विधि—आरम्भ में पृष्ठ ३८-६६ में लिखित विधि करके चार शरावे ले, एक में चावल, दूसरे में यव, तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भरके वेदी के उत्तर में धर देवे। धरके पृष्ठ ६९ में लिखे प्रमाणे "**ओम् अदितेऽनुमन्यस्व**" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीन बाजू और पृष्ठ ७० में लिखे प्रमाणे '**ओम् देव सवितः प्रसुव०**' इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटकाके, पूर्व पृष्ठ ६७-६८ में लिखित **अग्न्याधान समिदाधान** कर अग्नि को प्रदीप्त करके जो समिधा प्रदीप्त हुई हो उसपर लक्ष्य देकर पृष्ठ ७७-७८ में लिखे प्रमाणे **आघारावाज्यभागाहुति** ४ चार और **व्याहृति आहुति** ४ चार और पृष्ठ ८१-८३ में लिखे प्रमाणे आठ **आज्याहुति**, सब मिलके १६ सोलह आहुति देके, पृष्ठ ८० में लिखे प्रमाणे "**ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०**" इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देके, पश्चात् पृष्ठ ७८-७९ में लिखे प्रमाणे **व्याहृति आहुति** ४ चार और पृष्ठ ७९ में लिखे प्रमाणे **स्विष्टकृत्** मन्त्र से एक आहुति मिलके पाँच घृत की आहुति देवे।

इतनी क्रिया करके कर्मकर्त्ता परमात्मा का ध्यान करके नाई की

घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। —साम० ६१३
मेरी आँखों में स्नेह और वाणी में माधुर्य है।

ओर प्रथम देखके—

ओम् आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः॥ —अथर्व० कां० ६। सू० ६८॥

इस मन्त्र का जप करके, पिता बालक के पृष्ठ-भाग में बैठके किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्डा जल दोनों पात्रों में लेके—

ओम् उष्णेन वाय उदकेनैधि॥

इस मन्त्र को बोलके दोनों पात्र का जल एक पात्र में मिला देवे। पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा माखन अथवा दही की मलाई लेके—

ओम् अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥ १॥
—अथर्व० कां० ६। सू० ६८॥

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं
दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥ २॥

इन मन्त्रों को बोलके, बालक के शिर के बालों में तीन वार हाथ फेरके केशों को भिगोवे। तत्पश्चात् कङ्घा लेके केशों को सुधारके इकट्ठा करे, अर्थात् बिखरे न रहें। तत्पश्चात्—

ओम् ओषधे त्रायस्वैनम्॥

इस मन्त्र को बोलके तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबाके—

ओं विष्णोर्दंꣳष्ट्रोऽसि॥

इस मन्त्र से छुरे की ओर देखके—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः॥

इस मन्त्र को बोलके छुरे को दाहिने हाथ में लेवे। तत्पश्चात्—

ओं स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः॥ १॥
ओं निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ २॥

धुनयो यन्त्यर्थम्। —ऋ० २।३०।२
धुन के धनी अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

इन दो मन्त्रों को बोलके उस छुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप ले-जाके—

ओं येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान्॥

—अथर्व० का० ६। सू० ६८॥

इस मन्त्र को बोलके कुशसहित उन केशों को काटे और वे काटे हुए केश और दर्भ शमीवृक्ष के पत्रसहित, अर्थात् यहाँ शमीवृक्ष के पत्र भी प्रथम से रखने चाहिएँ, उन सबको लड़के का पिता और लड़के की माँ एक शरावा में रक्खें और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो, उसको गोबर से उठाके शरावा में अथवा उसके पास रक्खें। तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्।
तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

इस मन्त्र से दूसरी वार केश का समूह दूसरी ओर का काटके उसी प्रकार शरावा में रक्खे। तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम्।
तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

इस मन्त्र से तीसरी वार उसी प्रकार केशसमूह को काटके उपर्युक्त तीन मन्त्रों—अर्थात् (ओं येनावपत्०), (ओं येन धाता०), (ओं येन भूयश्च०), और—

ओं येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे॥

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोलके चौथी वार इसी प्रकार केशों के समूह को काटे, अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बायीं ओर के केश काटने का विधि करे। तत्पश्चात् उसके पीछे आगे के केश काटे।

परन्तु चौथी वार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये॥

वातर ँ हा भव वाजिन्। —यजुः० ९।८
हे वाजिन्! शक्तिशालिन्! तू वायु के समान तीव्रगामी बन।

यह मन्त्र बोल चौथी वार छेदन करे। तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥

इस एक मन्त्र को बोलके शिर के पीछे के केश एक वार काटके इसी (ओम् त्र्यायुषं०) मन्त्र को बोलते जाना और ओंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेरके मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके—

ओं यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान्।
शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः॥

इस मन्त्र को बोलके नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज कराके नापित से बालक का पिता कहे कि—'इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो, सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर। कहीं छुरा न लगने पावे'। इतना कहके कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले-जा, उसके सम्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठाके जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे, परन्तु पाँचों ओर थोड़ा-थोड़ा केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक वार सब कटवा देवे, पश्चात् दूसरी वार के केश रखने अच्छे होते हैं।

जब क्षौर हो चुके, तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिनमें प्रथम अन्न भरा था, नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर नाई को देवे। यथायोग्य उसको धन वा वस्त्र भी देवे और नाई केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर को जङ्गल में ले-जा, गढा खोदके उसमें सब डाल ऊपर से मिट्टी से दाब देवे। अथवा गोशाला, नदी वा तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवे, ऐसा नापित से कह दे। अथवा किसी को साथ भेज देवे, वह उससे उक्त प्रकार करा लेवे।

क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा, बालक के शिर पर लगाके स्नान करा, उत्तम वस्त्र पहनाके, बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठके, पृष्ठ ९३-९४

मा भेर्मा संविक्थाऽऊर्जं धत्स्व। —यजुः० ६।३५
मत डरो, मत घबराओ, उत्साही बनो।

में लिखे प्रमाणे सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथा योग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता-पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

''ओम् त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः''॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद देके अपने-अपने घर को पधारें और बालक के माता-पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें॥

अहमनृतात् सत्यमुपैमि। —यजुः० १।५
मैं असत्य को छोड़कर सत्य बोलूँ।

परिशिष्ट

सामाजिक पद्धतियाँ

जन्मदिवस=वर्षगाँठ

जन्मदिन का प्रारम्भिक विवरण

जीवन के खाते की पड़ताल कर हानि-लाभ पर दृष्टि डालकर हानिप्रद दुष्कर्मों, दुर्गुणों को त्यागने व लाभप्रद सत्कर्मों, सद्गुणों को अपनाने के लिए प्रभु से प्रार्थना करना व इसमें आये मन्त्रों के अनुकूल जीवन बनाने को संकल्पित होना ही जन्मदिन मनाने का मूल ध्येय है। जिस दिन यह करना हो प्रसन्नता व उल्लास के साथ अन्तर्बाह्य शुद्धि करके आचमन-अंग-स्पर्शपूर्वक ईश्वर स्तुति-प्रार्थनोपासना करके यज्ञोपवीत का महत्त्व प्रतिपादित कर, उसे सदैव धारण करने की प्रेरणा के साथ मन्त्रपूर्वक देकर स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण सस्वर बोलकर दैनिक व विशेष यज्ञ करके निम्न आहुतियाँ देवें।

ओम् उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे॥

—अथर्व० ७.३२.१

भावार्थ—हे स्तुति करने योग्य प्रियतम प्रभो! जिस प्रकार मैं इस आहुति के द्वारा इस यज्ञाग्नि को बढ़ा रहा/रही हूँ, वैसे ही मैं सात्त्विक अन्न का सेवन करके अपनी आयु को बढ़ाता हुआ/बढ़ाती हुई प्रतिवर्ष अपना जन्मदिवस मनाता/मनाती रहूँ।

ओम् इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्।
सर्वमायुर्जीव्यासम्॥ —अथर्व० १९.७०.१

भावार्थ—हे परमैश्वर्यवान् प्रभुदेव! आप हमें श्रेष्ठ जीवन दो। हे सूर्य! हे देवगण! आपकी अनुकूलतापूर्वक मैं दीर्घजीवी होऊँ।

सं गच्छध्वं सं वदध्वम्। —ऋ० १०।१९१।२
मिलकर चलो, मिलकर बोलो।

ओम् आयुषायुष्कृतां जीवायुष्माञ्जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम्॥
—अथर्व० १९.२७.८

भावार्थ—(मैं संकल्प लेता हूँ कि) मुझे मृत्यु के वशीभूत नहीं होना है। कर्मशील व आत्म-बल युक्त होकर ईश्वर-भक्त, महापुरुषों का अनुकरण करता हुआ मैं आयु को बढ़ाऊँगा। जीवनभर श्रेष्ठ कर्म करता हुआ यश प्राप्त करूँगा।

ओं शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः॥
—ऋ० १०.१६१.४

भावार्थ—मनुष्य श्रेष्ठ कर्म व संयम धारण कर सौ वर्ष तक जीने का प्रयास करे। विद्युत, अग्नि, सूर्य, बृहस्पति, अर्थात् ज्ञानाधिपति आदि से समुचित सहयोग व उपयोग लेकर मनुष्य सौ वर्ष तक जीवनधारण कर सकता है।

ओं सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे॥
—अथर्व० २०.९१.११

भावार्थ—हे विद्वानो! आपका 'आयुष्मान् भव' का आशीर्वाद सत्य हो। आपके मार्ग का अनुसरण करनेवालों की रक्षा आप ज्ञान देकर करते हो। आपके मार्गदर्शन में चलनेवालों के सब दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हे श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो! आप हमें वेदोक्त शिक्षा दो।

ओं जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥
ओम् उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥
ओं संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥
ओं जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥
—अथर्व० १९.६९.१-४

भावार्थ—जल की भाँति शान्त स्वभाव सज्जनो! आप मुझे

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। —यजुः० ३४।१
मेरा मन शिवसङ्कल्प करनेवाला हो।

दीर्घायु का शुभाशीष दो। सदाचरण व प्रभु-पूजा धारण कर मैं अपने जीवन को बढ़ा सकूँ। आप ऐसा जीवन दे सकते हो, सो कृपाकर मुझे श्रेष्ठ जीवन-तत्त्व प्रदान कीजिए। मैं आप लोगों की सहायता व प्रेरणा से दीर्घजीवन प्राप्त करूँ।

जितने वर्ष का हो उतनी गायत्री से आहुति करके पूर्णाहुति करें। यज्ञ-प्रार्थना के बाद मधुर प्रेरक भजन व संक्षिप्त प्रवचन करके पुष्प-वर्षा के साथ सभी योग्यजन निम्न शब्दों से आशीर्वाद दें—

हे ....(नामोच्चारण करें)! त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः।
आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी श्रीमान् भूयाः॥

हे...... ! तुम आयुष्मान्, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरुषार्थी, प्रतापी, परोपकारी, श्रीमान् बनो! (कन्या व स्त्री का हो तो उक्त विशेषण भी स्त्रीलिंग में बोलें)

सगाई का पूर्व कथन

नियत दिवस आचमनादिपूर्वक सभी दैनिक व विशेष यज्ञ करके अग्रांकित मन्त्रों से वर द्वारा आहुति दिलावें तथा सरलता के साथ इनके अर्थ भी सुनावें।

सगाई=वाग्दान

ओं भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्नइव पर्वतो ज्योक्पितृष्वास्ताम्॥ —अथर्व० १.१४.१

भावार्थ—(शिक्षा की पूर्णता के बाद विवाह का इच्छुक ब्रह्मचारी कन्या के पिता आदि से निवेदन करता है) वृक्ष-पुष्पों से बनी माला पहनकर शोभायमान की भाँति आपकी इस कन्या के तेज, सुन्दरता एवं विद्या-विनय आदि सद्गुणों से मैं अपने-आपको सजाना चाहता हूँ। यह अपने नये माता-पिता, अर्थात् सास-श्वसुरों के घर जाकर विस्तृत जड़ोंवाले पर्वत की तरह निश्चल होकर रहे।

ओं सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात्॥

—अथर्व० १४.१.९

भावार्थ—समान गुण-कर्म-स्वभाव, विद्यादि से सुभूषित, एक-

अदीनाः स्याम शरदः शतम्। —यजुः० ३६।२४
हम सौ वर्ष तक अदीन होकर जीएँ।

दूसरे की इच्छा करनेवाले युवक-युवति हों तो पति की कामनावाली तेजस्विनी कन्या को माता-पिता योग्य वर को देने का संकल्प लें।

ओम् एषा तै राजन्कन्या वधूर्नि धूयतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहे ऽथो भ्रातुरथौ पितुः॥

—अथर्व० १.१४.२

भावार्थ—(वर के प्रस्ताव को स्वीकार कर कन्या का पिता कहे) मर्यादा का पालन करनेवाले ज्ञान के तेज से प्रकाशित वर महोदय! हमारी कन्या आपके साथ गृहस्थ होकर सर्वविधि आनन्दित होवे। यह कन्या अपने नये परिवार में कुल-मर्यादा में बँधकर सुखपूर्वक रहे।

ओम् एषा तै कुलपा राजन्तामु ते परि दद्मसि।
ज्योक्पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात्॥

—अथर्व० १.१४.३

भावार्थ—विद्या-बल से प्रकाशमान वर महोदय! हमारी कन्या तुम्हारी कुल-मर्यादा का पालन करेगी। तुम्हारे माता-पिता आदि के साथ यह जीवनभर अपनी श्रेष्ठ बुद्धि, सदाचरण, सेवा और शीलता से सुख व शान्ति को बढ़ानेवाली होगी, इसीलिए हम इसे तुम्हें सौंप रहे हैं।

ओम् असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च।
अन्तःकोशमिव जामयोऽ पि नह्यामि ते भगम्॥

—अथर्व० १.१४.४

भावार्थ—दुराग्रह व पूर्वाग्रहों से रहित वर महोदय! प्रभु के प्राणवत् प्रिय वेद-ज्ञान, ऐश्वर्य आदि सद्गुणों के कारण तुम्हें यह कन्या दे रहा हूँ। जिस प्रकार अपने स्वर्णाभूषण आदि बहुमूल्य कोष को स्त्रियाँ तिजोरी आदि में सुरक्षित रखती हैं, वैसे ही इस कन्या का सौभाग्य तुम्हारे अन्दर सुरक्षित रहे।

तीन गायत्री की आहुति देकर पूर्णाहुति करके यज्ञ-प्रार्थना करें। तत्पश्चात् कन्या का भाई वर का चन्दन-केसर आदि से तिलक करे। पुरोहित निम्न मन्त्र बोले—

अनुव्रतः पितुः पुत्रः। —अथर्व० ३।३०।२
पुत्र पिता का अनुवर्त्तन करनेवाला हो।

ओम् इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे॥

—अथर्व० २.३६.७

तदनन्तर वर को मिष्टान्न, मेवे व अन्य वस्त्राभूषण समर्पित करके उपस्थितजन '**ओं सौभाग्यमस्तु। ओं शुभं भवतु। ओं स्वस्ति, ओं स्वस्ति, ओं स्वस्ति**' के साथ आशीर्वाद देकर शान्तिपाठ करें।

गोद भरना—पूर्व कथन

वर पक्ष से इस निमित्त स्त्री-पुरुष आवें तो प्रातः शुद्ध वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित कन्या व परिजन आचमन से लेकर सामान्य व विशेष यज्ञ करके निम्न मन्त्रों से कन्या द्वारा आहुति दिलावें। साथ में सरल शैली के साथ भावार्थ भी सुनाते जावें।

गोद भरना—(चुन्नी चढ़ाना)

ओं वधूरियं पतिमिच्छन्त्यैति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते॥

—ऋ० ५.३७.३

भावार्थ—विद्या-विनय-सम्पन्न, शीलता, सदाचार एवं सद्-व्यवहार में वर्त्तमान, श्रेष्ठ कुल-उत्पन्न वर-वधू एक-दूसरे की कामनावाले होकर परस्पर मिलें। गृहस्थ का भार वहन करने की योग्यतावाले गृहस्थ में प्रवेश करके विद्या, यश एवं धन-धान्य को प्राप्त करें। रथ के पहियों की भाँति बराबर का व्यवहार करते हुए परस्पर प्रियाचरण व प्रिय भाषण करें। ऐसे सद्‌गुण, सद् व्यवहार व सत्कर्मों से युक्त गृहस्थ प्रभु-कृपा से नित्य सुख-सौभाग्य से भरे रहते हैं।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान्महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु॥

—अथर्व० २.३६.३

भावार्थ—सर्वहितकारिणी यह वधू योग्य पति को प्राप्त होकर श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म देकर सौभाग्य की वृद्धि करे। वीर पुत्र जनती हुई

धियो यो नः प्रचोदयात्। —यजुः० ३।३५
सविता देव हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

यह वधू पतिकुल में सम्मान व सुख को प्राप्त होवे।

ओं भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम्।

तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्य‍ः॥ —अथर्व० २.३६.५

भावार्थ—हे नव वधू! अपने पति के ऐश्वर्य से रची गई गृहस्थरूपी नौका पर सवार होकर उसे ऐसी कुशलता से गति व दिशा दे कि जिससे तेरा पति सब विपत्तियों व ऋणों से पार हो जावे।

ओम् आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्य‍ः।

त्वमस्यै धेह्योषधे॥ —अथर्व० २.३६.८

भावार्थ—हे सर्वप्रेरक प्रभो! यह वधू अपने पति को सदैव मर्यादापालन में प्रेरित करके उसे यश दिलावे। इसका पति नित्य नीरोगी और बलवान् होवे। ये वर-वधू वेदोक्तमर्यादा का पालन करते हुए यशस्वी होकर ओषधिवत् सबके लिए सुखद हों।

तदनन्तर गायत्री की तीन आहुति देकर पूर्णाहुति करें। यज्ञ-प्रार्थनादि करके वरपक्ष की स्त्रियाँ वधू को साड़ी आदि सुन्दर वस्त्राभूषण पहनने को दें। उसके बाद—

ओम् इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।

एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे॥ —अथर्व० २.३६.७

मन्त्र से वर की बहिन या भाभी केसर आदि का तिलक वधू को लगा, उसकी गोद में नारियल, फल व मिष्टान्न रखकर वधू को खिलावें। वधू सबको ससम्मान नमस्ते करे। उसके बाद—

ओं सौभाग्यमस्तु—ओं शुभं भवतु बोलकर तीन बार '**ओं स्वस्ति**' उच्चारण करते हुए पुष्पों व जल से सभी वधू को आशीर्वाद दें।

वर-बारात का स्वागत—मिलनी

जब बारात कन्यागृह व किसी नियत स्थान के मुख्य द्वार पर पहुँचे तो कन्यापक्ष उसका भली-भाँति स्वागत-सत्कार करे। ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना के मन्त्रों का श्रद्धासहित मधुर उच्चारण करके—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। —अथर्व० ११।५।१९
ब्रह्मचर्य और तप से देव=विद्वान् मौत को मार भगाते हैं।

ओं स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

—यजुः० २५.१९

मन्त्रोच्चारणपूर्वक वर-वधु के पिता आदि परस्पर फूल-मालाओं से स्वागत करें, तदनन्तर अन्य चाचा, भाई आदि सम्बन्धी भी परस्पर वैसा ही व्यवहार करें। ऐसा करने के बाद तीन बार '**ओं स्वस्ति**' का उच्चारण करते हुए कन्यापक्ष बड़ी श्रद्धा, सभ्यता से वरपक्ष के ऊपर पुष्प-वर्षा करे और सम्मानसहित सभी को अन्दर ले-जाकर यथायोग्य आसनों पर बिठावें।

वैवाहिक वर्षगाँठ

जैसे प्रतिवर्ष जन्मदिन मनाते हुए सुखी व दीर्घजीवन जीने के लिए वैदिक सिद्धान्तों को अपनाने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं, ठीक उसी प्रकार वैवाहिक वर्षगाँठ को मनाते हुए गृहस्थ-जीवन की वेदोक्त शिक्षा दी जाती है। पति-पत्नी के परस्पर कर्त्तव्यों का स्मरण कराते हुए प्रेम-प्रीति का वातावरण बनाना भी इसका उद्देश्य है।

जिस दिन यह वर्षगाँठ मनावें उस दिन पति-पत्नी सुन्दर स्वच्छ वस्त्र पहिनकर नित्यकर्मानुसार आचमनादि से लेकर ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करके अग्न्याधान से दैनिक यज्ञ तक पूर्ण करके आज्यभागाहुति, व्याहृति आहुति देकर, स्विष्टकृत-आहुति भात से देकर, अष्टाज्याहुतिपूर्वक सभी क्रियाएँ कर लें। उसके बाद निम्न मन्त्रों की आहुति देते हुए साथ में सुस्पष्ट भाषा में इनके अर्थ भी सुनाते चलें।

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥

—ऋ० १०.८५.४७

हे उपस्थित सज्जनो! हम दोनों के हृदय परस्पर जल के समान मिले हुए रहेंगे। जैसे प्राणवायु सबको प्रिय है, वैसे ही हम एक-दूसरे को चाहते हैं। जैसे संसार का धारक सबको धारण कर रहा है, वैसे ही हम एक-दूसरे की सुख-सुविधा व दुःख-दुविधा को धारण

मा पुरा जरसो मृथाः। —अथर्व० ५।३०।१७
तू बुढ़ापे से पूर्व मत मर।

करते रहेंगे। जैसे उपदेशक अपने श्रोताओं का हित व उन्नति चाहता है, हम भी एक-दूसरे का हित व उन्नति वैसे ही चाहेंगे।

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

—पार० १.८.८

(पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति कहते हैं) मैं अपने श्रेष्ठ व्यवहारों को तुम्हारे हृदय में रखता हूँ/रखती हूँ। तुम्हारा चित्त सदैव मेरे चित्त के अनुकूल होवे। मेरी वाणी को तुम एकाग्रमना (ध्यान से) सुनना। प्रजापति ने हमें एक-दूसरे के साथ नियुक्त किया है। हमें इसका सफल निर्वाह करना है।

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना।
बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते॥ —ब्रा० १.३.८

अन्न के साथ प्राण का और प्राण के साथ अन्न का तथा अन्न और प्राण का आकाश के साथ जैसा अटूट सम्बन्ध है, वैसा ही अटूट सम्बन्ध मैं तेरे मन, हृदय व चित्त का सत्य के साथ जोड़ता। जोड़ती हूँ। पति-पत्नी दोनों इस सम्बन्ध का निष्ठा व श्रद्धा से पालन करें।

ओं यदेतद् हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम।
यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव॥ —ब्रा० १.३.९

(पति-पत्नी परस्पर इच्छा व्यक्त करते हैं) तुम्हारा आत्मा वा अन्तःकरण सदा मेरे आत्मा व अन्तःकरण के अनुकूल हो। मेरा हृदय, मन आदि भी तुम्हारे हृदय, मन के अनुकूल होकर, हम परस्पर एक-दूसरे का प्रियाचरण ही करते रहें।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

—यजुः० ३६.२४

हे सर्वज्ञ, देवों के परम हितैषी, प्रभुदेव! आपने सृष्टि के प्रारम्भ में ही अपने दिव्य, पवित्र स्वरूप व ज्ञान को हमारे लिए प्रकट कर दिया था। हे परमेश! हम देवत्त्व को धारण करते हुए आपकी कृपा

अग्ने नय सुपथा राये। —यजु:० ५।३६
हे प्रभो! धन कमाने के लिए आप हमें सुपथ से चलाइए।

से सौ वर्ष तक देखते रहें, सौ वर्ष तक आपकी मर्यादा-पालनपूर्वक जीते रहें, सौ वर्ष तक आपके गुण-कीर्तन सुनते व बोलते रहें, आपकी अनुभूति व आज्ञापालन के द्वारा हमारा शतायु जीवन स्वस्थ, सबल व दीनतारहित होवे। सौ वर्ष से अधिक जिएँ तो भी उक्त सभी गुण-कर्मों के साथ ही जिएँ।

इन आहुतियों के बाद तीन आहुति गायत्रीमन्त्र से देकर पूर्णाहुति करें, ईश-भजन व गृहस्थ शिक्षापरक गीत मधुर स्वर से गावें। '**ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु**' वाक्य तीन वार बोलकर पुष्प व जल से आशीर्वाद देकर शान्तिपाठ करें।

व्यापार का शुभारम्भ (मुहूर्त)

व्यापार-दुकान आदि खोलना हो या जिस दिन खोला हो उस दिन प्रतिवर्ष व्यापारी-दुकानदार अपने प्रतिष्ठान में निम्नविधि से यज्ञ करे, करावे। सात्त्विक भावना के साथ सुयोग्य कर्मकुशल पुरोहित को आमन्त्रित करके यथाविधि दैनिक यज्ञ करे। तदनन्तर विशेष यज्ञ की सभी आहुतियाँ देकर व्यापार क्रिया से सम्बन्धित निम्न आहुतियाँ भी दे और पुरोहित इनके सरल भाषा व समझाने की शैली में अर्थ भी सुनाए।

ओम् इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्॥
—अथर्व० ३.१५.१

अर्थ—व्यापार की वृद्धि चाहता हुआ मैं व्यापारी सर्वैश्वर्यशाली परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वह हमारे व्यापार कार्यों को निरन्तर प्रेरणा से बढ़ाए। हमारे व्यापार में आनेवाले विघ्न-बाधाओं को दूर करके वह प्रभु हमारे लिए धन देनेवाला हो।

ओं ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि॥
—अथर्व० ३.१५.२

अर्थ—भूमि, सागर व अन्तरिक्ष में गमन करनेवाले यान आदि हमारे अनुकूल हों। दूर देश से ढेर सारा माल खरीद कर मैं बहुत-सा धन प्राप्त करूँ।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम। —ऋ० ६।५२।५
हम सदा पुष्प के समान बनें।

ओम् इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्॥
—अथर्व० ३.१५.३

अर्थ—हे ज्ञानवान् भगवन्! बहुत लाभ की इच्छा लेकर मैं घृत-सामग्री द्वारा बल-बुद्धि व धैर्य की प्राप्ति के लिए यज्ञ द्वारा आपकी स्तुति कर रहा हूँ। मैं पुरुषार्थी होकर व्यापार-सम्बन्धी सिद्धियों को प्राप्त करूँ।

ओं येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान्हविषा नि षेध॥
—अथर्व० ३.१५.५

अर्थ—मैं प्रारम्भिक पूँजी लगाकर लाभ कमाना चाहता हूँ। जो धन मैंने व्यापार में लगाया है, वह न्यून न होकर कई गुना बढ़ जावे। हे प्रभुदेव! आप मेरे व्यापार-मार्ग की बाधाओं को हटा दीजिए।

ओं येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तस्मिन्म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः॥
—अथर्व० ३.१५.६

अर्थ—व्यापार में लगाये धन को मैं अधिकाधिक बढ़ाना चाहता हूँ। हे परमात्मदेव! इसके लिए आप मेरे उत्साह को बढ़ावें, जिससे मैं नित्यशः आपकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करता रहूँ, क्योंकि आप ही मेरे प्रेरक व रक्षक हो।

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥
—ऋ० १०.१२१.१०

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामी जगत्पिता, आप ही सबके स्वामी हो! जिस किसी उत्तम इच्छा के साथ हम आपकी स्तुति आदि करें, वह हमारी इच्छा आपकी कृपा से पूर्ण होवे तथा हम श्रेष्ठ धन-सम्पति के स्वामी होवें।

इसके बाद वैश्यधर्म का संक्षिप्त उपदेश देकर, धन की पवित्रता प्रकाशित कर गायत्रीमन्त्र से तीन आहुति देवें। पूर्णाहुति के बाद

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्। —ऋ० ६।५२।५
हम उदय होते हुए सूर्य को देखें।

यज्ञ-प्रार्थना व भजनादि गाकर निम्न वचनों से आशीर्वाद देकर शान्तिपाठ करें।

ओं सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः, सफला सन्तु यजमानस्य कामाः, पूर्णाः सन्तु यजमानस्य कामाः।

ओं स्वस्तिः! ओं स्वस्तिः!! ओं स्वस्तिः!!!

नए भवन का शिलान्यास

जब कभी नया भवन बनावें, चाहे उसका प्रयोजन कुछ भी (निवास, विद्यालय, यज्ञशाला, गौशाला आदि) हो तो उसकी नींव रखने की प्रक्रिया को शिलान्यास कहते हैं। जिस दिन यह करना चाहें उस दिन भूमि, खोदकर यज्ञवेदी बनावें, आचमन, अङ्ग-स्पर्श से लेकर दैनिक यज्ञ की आहुतियाँ देकर निम्न मन्त्रों से अर्थ सुनाते हुए आहुतियाँ प्रदान करें—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा॥ —यजुः० ३०.३

अर्थ—हे सकल जगत् के बनानेवाले, सब सुखों के दाता प्रभुदेव! कृपा कर हमारे इस कार्य में आनेवाली विघ्न-बाधाओं को दूर कर दीजिए। जो कल्याणकारक, सहायक गुण-कर्म व पदार्थ हैं, वे सब हमको प्राप्त कराइए!

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥
—ऋ० १०.१२१.१०

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मन्! जिस उत्तम कामना के साथ हम आपकी स्तुतिपूर्वक यह कार्य कर रहे हैं, आपकी कृपा से हमारी वह सद्भावना व यह कार्य पूर्णता को प्राप्त होवे और हम श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव व धन-धान्य के स्वामी होवें।

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ —यजुः० ३६.३

अर्थ—हे संसार के बनानेवाले परम पवित्र एवं पवित्रकर्त्ता प्रभो! हम आपके तेजःस्वरूप को धारण करते हैं। धारण किया गया

अश्मा भवतु नस्तनूः। —अथर्व० २।१३।४
हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों।

आपका वह पवित्र ज्ञानस्वरूप हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग व सत्कर्म में प्रेरित करे।

ओम् ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निर्मिता मिता।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः॥
—अथर्व० ९.३.१६

अर्थ—समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुसार बनाये गये ये भवन हमें नैरोग्य, बल, पराक्रम व धन-समृद्धि से युक्त करें। दूध एवं जलादि रसों से युक्त भूमि पर सब प्रकार के अन्नों को धारण व ग्रहण कराकर हमारे लिए सदा सुखदायक हों।

ओं ब्रह्मणा शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम्।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः॥ —अथर्व० ९.३.१९

अर्थ—बुद्धि-विज्ञानपूर्वक, विद्वानों की सम्मति से बनाई जा रही कुशल शिल्पियों द्वारा उचित माप से दृढ़तापूर्वक बनाई जाकर यह शाला रहनेवालों के लिए अग्नि, वायु को सुखद बनावे।

इसके बाद निम्न तीन मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक नियत स्थान पर तीन बार जल छिड़कें—

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ —यजुः० ३६.१४

ओं यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ —यजुः० ३६.१५

ओं तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥ —यजुः० ३६.१६

जल छिड़कर निम्न मन्त्र के साथ नींव का पत्थर व ईंट रखावें—

ओम् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ —साम० १.१.१

अर्थ—हे सृष्टि-निर्माता प्रभो! आप हमारे इस पावन कर्मरूप यज्ञ में उपस्थित हूजिए। आप ही हमारे इष्ट देव हो, इसलिए हम

मिमीहि श्लोकमास्ये। —ऋ० १।३८।१४
अपने मुख को वेद-मन्त्रों से भर लो।

शुभकर्म से पहले आपको ही पुकारते हैं। आप हमारे हृदय में सब शक्तियों व सद्भावों को प्रकाशित कीजिए, जिससे हम सदैव सत्कर्मों में प्रवृत्त रहकर सफलता प्राप्त करें।

इसके बाद गायत्रीमन्त्र से तीन आहुति देकर पूर्णाहुति दें, ईश-भक्ति का सुन्दर सुमधुर भजन बोलकर पुरोहित एवं आगन्तुक योग्यजन निम्न वाक्यों के साथ पुष्प-वर्षा से या जल छिड़ककर आशीर्वाद दें।

ओं सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।

ओं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

शुद्धि-विधि

अन्य मत-पन्थ-सम्प्रदाय का कोई विवेकी पुरुष सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय, मननादि से अथवा किसी सज्जन की सत्प्रेरणा से वैदिक धर्म को अपनाना चाहे तो प्रथम उसे एक दिन निराहार रखके, दूसरे दिन (पुरुष को) क्षौर कर्म करा स्नानादि से शुद्ध कर स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर प्रथम निम्न मन्त्रों का उससे पाठ करावे तथा शुद्धिकर्त्ता किञ्चित जल लेकर उसपर छिड़के—

ओं पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ —यजुः० १९.३९

ओं पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्। अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥ऽरनु॥ —यजुः० १९.४०

ओं यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा॥ —यजुः० १९.४१

तदनन्तर यज्ञवेदि पर पूर्वाभिमुख बैठाकर 'शन्नो देवीरभिष्टय..' मन्त्र से आचमन करवाकर गायत्रीमन्त्र बुलवावें। मन्त्रपूर्वक यज्ञोपवीत देकर उसकी उपयोगिता व महत्त्व सुनाकर गायत्री का भी अर्थ संक्षेपतः सुनावें। तदनन्तर आचमन, अङ्ग-स्पर्श, प्रार्थना-मन्त्र अर्थपूर्वक, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण के बाद विधिवत् सामान्य यज्ञ करावें। इसके बाद निम्न मन्त्रों से विशेष आहुति दिलावें—

अनृणाः स्याम। —ऋ० ६।११७।३
हम किसी के ऋणी न हों।

ओं यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥ —यजुः० २०.१४
ओं यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥ —यजुः० २०.१५
ओं यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽएनांसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥ —यजुः० २०.१६
ओं यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि॥
—यजुः० २०.१७

इनकी आहुति दिलवाकर निम्न दो मन्त्रों को उससे भली प्रकार अर्थसहित मनोयोगपूर्वक बुलवावें। शुद्ध होनेवाला व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) इन मन्त्रों पर निरन्तर चिन्तन व मनन करता हुआ प्रायश्चित्त-पूर्वक वेद-पथ पर सर्वात्मना चलने के लिए प्रभु से प्रार्थना करता रहे।

ओं यद्विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः॥
—अथर्व० ६.११५.१

(**विद्वांसः**) हे विद्वानो! (**अविद्वांसः**) अनजाने में (**वयं**) हमने (**यत् यत्**) जो-जो (**एनांसि**) पाप (**चकृम**) किये हैं (**यूयम्**) आप (**विश्वेदेवाः**) सब विद्वान् (**सजोषसः**) प्रीति के साथ (**तस्मात्**) उस पाप-समुदाय से (**नः**) हमें (**मुञ्चत**) पृथक् कर दो।

ओम् इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्॥
—ऋ० १.३१.१६

शब्दार्थ—अग्ने=हे पापनाशक ऊर्ध्व प्रेरक परमात्मन्! **इमां नः**=हमारे इस **शरणिम्**=आपके वेदादेश के त्यागरूप आत्म-अपराध को, **मीमृषः**=क्षमा कर दो। **इमम् अध्वानम्**=इस भ्रान्त पथ का अवलम्बन कर **यम्**=जिसपर हम, **दूरात्**=दूर तक (बहुत समय)

जायेदस्तम्। —ऋ० ३।५३।४
हे ऐश्वर्यशाली पति! पत्नी ही घर है।

अगाम=चलते रहें हैं, उसे क्षमा कर दो। (हे प्रभो! आप) **सोम्यानाम्**=सौम्यजनों के, **आपिः**=बन्धु, पिता और **प्रमतिः**=शुभ मति देनेवाले हो। **मर्त्यानाम्**=मनुष्यों को, **भृमिः**=घुमाकर, **ऋषिकृत्**=ऋषि कर देनेवाले, **असि**=हो।

इसके साथ ही उसे अर्थसहित गायत्रीमन्त्र का संक्षिप्त उपदेश देकर उसकी महत्ता विदित करके नित्य अर्थ व भावनासहित गायत्रीमन्त्र की समय व सुविधानुसार १०-२० आवृत्ति प्रातः-सायं करते रहने का व्रत निम्न मन्त्र से दिलाएँ—

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ —यजुः० १.५

इसकी आहुति दिलाकर पूर्णाहुति करें। यज्ञ-प्रार्थना व ईश्वर-भक्ति के भजनादि बोलकर वैदिक धर्म की महत्ता पर योग्यरीति से प्रभावी प्रवचन भी करना चाहिए।

आर्यपर्व-पद्धति (मन्त्र-भाग)

अपनी भारतीय सभ्यता, संस्कृति की पावन धारा को पूर्व पीढ़ियों से यथावत् लेकर भावी पीढ़ियों को तथावत् सौंपना वर्त्तमान पीढ़ी का मानवीय दायित्त्व है। महर्षि देव दयानन्द की असीम कृपा से हमें अपने प्राचीन गौरव व जीवन-आदर्शों की जो प्राप्ति हुई है, वह हमारे ऊपर ऋषि-ऋण है। हमारे वैदिक-युगीन पर्व=त्यौहार जहाँ उल्लास व आनन्द से जीवन को सरस बनाते थे, वहीं हमारी संस्कृति की धर्म-प्रवणता इनमें सन्निहित है। अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धावान् एवं स्व जीवन को धर्मयुक्त आनन्द से पूरित करने के इच्छुक महानुभाव इन सभी पर्वों को वैदिक भावनानुरूप अवश्य मनावें।

१. नवसंवत्सर (चैत्रसुदी प्रतिपदा)

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳसंवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्याऽएत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद॥१॥ —यजुः० २७.४५

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर। —अथर्व० ३।२४।५
हज़ार हाथों से कमा और सैकड़ों हाथों से दान कर।

यमाय यमसूमथर्वभ्यो ऽवतोकाꣳ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्यो ऽजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम्॥ २॥ —यजुः० ३०.१५

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः॥ ३॥
—ऋ० १.१६४.४८

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः॥ ४॥
—ऋ० १.१६४.२

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥ ५॥
—ऋ० १.१६४.११

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम्॥ ६॥
—ऋ० १.१६४.१२

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा। तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः॥ ७॥
—ऋ० १.१६४.१३

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति। सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥ ८॥
—ऋ० १.१६४.१४

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज॥ ९॥
—अथर्व० ३.१०.३

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः। अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥ १०॥ —अथर्व० ४.३५.४

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनम्। —ऋ० १०।४८।५
मैं इन्द्र हूँ, मैं अपने ऐश्वर्य को कभी हार नहीं सकता।

२. आर्यसमाज स्थापना-दिवस (चैत्रसुदी ५)

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ १॥ —अ० ६.६४.१

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता। सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत्॥ २॥ —अ० ६.७४.१

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥ ३॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ ४॥
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥ ५॥
—अथर्व० ३.३०.५-७

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि। अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि॥ ६॥ —अ० ६.९४.१

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ७॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ८॥ —ऋ० १०.१९१.३-४

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ९॥ —ऋ० ३.६२.१०

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥१०॥ —यजुः० ३६.१८

३. श्रीरामनवमी (श्रीराम-जन्म चैत्रसुदी ९)

नोट—सामान्य और नित्य हवन करें। विशेष आहुतियाँ पर्व-पद्धति में नहीं है।

इदं वपुर्निवचनम्। —ऋ० ५।४७।५
यह शरीर प्रशंसा करने योग्य है।

४. हरि तृतीया (हरयाली तीजो)

उत्साहपूर्वक बृहद् यज्ञ करें। कोई विशेष आहुतियाँ नहीं हैं।

५. श्रावणी (ऋषितर्पण) श्रावणसुदी पूर्णिमा

नित्य का हवन, सामान्य हवन, पूर्णिमा की आहुति देने के बाद—

(१) **ब्रह्मणे स्वाहा**, (२) **छन्दोभ्यः स्वाहा।**

ये दो आहुतियाँ देकर निम्नलिखित १० आहुतियाँ घी की दें—

सावित्र्यै स्वाहा॥ १॥ ब्रह्मणे स्वाहा॥ २॥ श्रद्धायै स्वाहा॥ ३॥ मेधायै स्वाहा॥ ४॥ प्रजायै स्वाहा॥ ५॥ धारणायै स्वाहा॥ ६॥ सदसस्पतये स्वाहा॥ ७॥ अनुमतये स्वाहा॥ ८॥ छन्दोभ्यः स्वाहा॥ ९॥ ऋषिभ्यः स्वाहा॥ १०॥

तदनन्तर ऋग्वेद की निम्न ११ ऋचाओं से आहुति दें—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥ १॥
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥ २॥
यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥ ३॥
उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ ४॥
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥ ५॥
यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ ६॥
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे॥ ७॥
हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे॥ ८॥

मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः। —ऋग्वेद ८।४८।१४
आलस्य, प्रमाद और बकवास हमपर शासन न करें।

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः॥ ९॥
सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय॥ १०॥
ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः॥ ११॥

—ऋ० १०.७१.१-११

इसके पश्चात् यजुर्वेद के निम्न मन्त्र से आहुति दें—

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा॥ —यजुः० ३२.१३

नोट—यजमान या गृहपति हवन करे किन्तु मन्त्र सब बोलें, सब उपस्थिति जन पलाश की तीन-तीन घी में डुबोई हुई समिधाओं से गायत्री मन्त्र से तीन-तीन आहुति दें। पुनः स्विष्टकृत् आहुति दें।

पश्चात् 'शन्नो मित्रः' मन्त्र को पढ़कर प्रातराश किया जाए। फिर मुख धो, आचमन कर अपने-अपने आसनों पर बैठ, जलपात्रों में कुशाओं को रख, हाथ जोड़ पुरोहित के साथ ३ बार ओङ्कार व्याहृतिपूर्वक सावित्रीमन्त्र पढ़कर वेदों के निम्न मन्त्र पढ़ें—

ऋग्वेद—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ —ऋ० १.१.१

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ —ऋ० १०.१९१.४

यजुर्वेद—

॥ ओ३म् ॥ क इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ १॥

—यजुः० १.१

स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज। —अथर्व० ११।१।२२
अपने शरीर में नीरोग होकर रहो।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म॥ —यजुः० ४०.१७

सामवेद—

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ —साम० पूर्वा० १.१

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व॥
—साम० उ०प्र० ९.१

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
—साम० उ०प्र० ९.३

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥ —साम० उ०प्र० ९.१-३

अथर्ववेद—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ —अथर्व० १.१.१

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै॥
—अ० २०.१४३.४

तत्पश्चात् प्रथम निम्न पारस्करगृह्यसूत्र के मन्त्र को पढ़कर सामवेद का वामदेव्य गान करें।

सह नोऽस्तु सह नोऽवस्तु, सह नो वीर्यवदस्तु। ब्रह्मा इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामहे॥

अहं सूर्यइवाजनि। —साम० १५२
मैं सूर्य के समान बन जाऊँ।

६. श्रीकृष्ण जन्माष्टमी (भाद्रकृष्णा ८)

ओं तेजोऽसि तेजो मयि धेहि स्वाहा॥ १॥
ओं वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि स्वाहा॥ २॥
ओं बलमसि बलं मयि धेहि स्वाहा॥ ३॥
ओं ओजोऽस्योजो मयि धेहि स्वाहा॥ ४॥
ओं मन्युरसि मन्युं मयि धेहि स्वाहा॥ ५॥
ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि स्वाहा॥ ६॥

७. विजयादशमी (आश्विन शु० १०)

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ॥ १॥
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं१ बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥ २॥
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ ३॥
तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥ ४॥
एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वे३षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥ ५॥
उद्धर्षन्तां मघवन्वाजिनान्युद्वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग्घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६॥
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥ ७॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान्प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ॥ ८॥

—अथर्व० ३.१९.१-८

मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र। —अथर्व० २०।११६।१
हम अशक्त-से, दीन-दुःखी न हों।

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन्परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ ९ ॥
उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
सन्दृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ १० ॥

—अथर्व० ११.९.१-२

८. शारदीय नवसस्येष्टि (दीपावली)

कार्तिकवदी अमावास्या

(श्रीमद्दयानन्द बलिदान दिवस)

ज्ञातव्य—नवीन धान की खील और बतासे सामग्री में मिला लें। सामान्य व नित्य का हवन करें। पश्चात् अमावस्या की आहुतियाँ देकर ऋषि निर्वाण की निम्न आहुतियाँ दें—

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥ १ ॥
मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ २ ॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ३ ॥
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ ४ ॥
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ ५ ॥

—ऋ० १०।१८।१-५

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥ ६ ॥

—अथर्व० ३.३१.८

वयं भगवन्तः स्याम। —अथर्व० ९।१०।२०
हम सब ऐश्वर्यशाली हों।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ ७ ॥
—अथर्व० ११.५.१९

नवसस्येष्टि की ३१ विशेष आहुतियाँ[१]

शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभिमातिषाहे ।
शतं यो नः शरदो अजीजादिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा ॥ १ ॥
ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वि यन्ति।
तेषां यो आ ज्यानिमजीजिमावहास्तस्मै नो देवाः परिदत्तेह सर्वम् ॥ २ ॥
ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सवितन्नो अस्तु ।
तेषामृतूनाᳬ शतशारदानां निवात एषामभये स्याम ॥ ३ ॥
इद्वत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयᳬ सुमतौ यज्ञियानां ज्योग् जीवा अहताः स्याम ॥ ४ ॥
—म० ब्रा० २.१.९ से १२, खं० ७, सू० १०–११

ओं पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो तस्मै द्युभिरावृतः।
तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा ॥ ५ ॥
ओं यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्।
तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतं स्वाहा ॥ ६ ॥
ओं सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठयᳬ श्रैष्ठ्यᳬ श्रीः।
प्रजामिहावतु स्वाहा। इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥ ७ ॥

ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताᳬसा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा। इदमिन्द्रपत्न्यै—इदन्न मम ॥ ८ ॥

ओं अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृता अतन्द्रिता। खलमालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा। इदं सीतायै—इदन्न मम ॥ ९ ॥

---

१. यही ३१ आहुतियाँ होली पर्व पर दी जाती हैं।

अघमस्त्वघकृते। —अथर्व० १०।१।५
बुरा करनेवाले का बुरा होता है।

ओं सीतायै स्वाहा॥ १०॥ ओं प्रजायै स्वाहा॥ ११॥ ओं शमायै स्वाहा॥ १२॥ ओं भूत्यै स्वाहा॥ १३॥

—पार० काण्ड २, क० १७, मं० ७-१०

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१४॥

—यजुः० १८.१२

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु॥१५॥

वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२॥ऽऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयम्॥१६॥

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽआशा वाजपतिर्भवेयम्॥१७॥

—यजुः० १८.३२-३४

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१८॥
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्॥ १९॥
लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम्॥ २०॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥२१॥
शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥२२॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥२३॥

कृणुत धूमं वृषणः। —अथर्व० ११।१।२
हे शक्तिशाली मित्रो! आओ, संसार में एक हलचल मचाएँ।

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् ।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ २४॥
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥ २५॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्यावृवृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना ॥ २६॥
—अथर्व० ३.१७.१-९

इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। इदमिन्द्राग्निभ्याम् इदन्न मम॥ २७॥
विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।
इदं विश्वेभ्यो देवेभ्य इदन्न मम॥ २८॥
द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। इदं द्यावापृथिवीभ्याम् इदन्न मम॥ २९॥
स्विष्टमग्ने अभि तत्पृणीहि विश्वाश्च देवः पृतना अभिष्यक्।
सुगन्नु पन्थां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरं न आयुः स्वाहा॥ ३०॥
—पा० २.१७.७.९.१०

यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम॥
—पार० १.२.१०

९. मकर सौर-संक्रान्ति

निम्न विशेष आहुतियाँ (सामग्री में तिल और शर्करा मिलाकर) दें।

ओ३म् सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू।
अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि स्वाहा॥
कल्पेतां द्यावापृथिवी स्वाहा॥
कल्पन्तामापऽओषधयः स्वाहा॥
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः स्वाहा॥
येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। हैमन्तिकावृतूऽ

मा क्रुधः। —अथर्व० ११।२।२०
क्रोध मत करो।

अभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवत-याङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ —यजुः० अ० १४, मं० २७

ओं तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।
अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां स्वाहा॥
द्यावापृथिवी कल्पन्तां स्वाहा॥
कल्पन्तामापऽओषधयः स्वाहा॥
अग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः स्वाहा॥
येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। शैशिरावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ —यजुः० अ० १५, मं० ५७

१०. वसन्तपञ्चमी (माघ सुदी ५)

वसन्तेनऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः। रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥१॥ —यजुः० अ० २१, मं० २३

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। वासन्तिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥२॥
—यजुः० १३.२५

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः। सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व॥३॥

मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥४॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳरजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥५॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२॥ऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥६॥ —यजुः० १३.२६-२९

कालो अश्वो वहति। —अथर्व० १९।५३।१
समयरूपी घोड़ा दौड़ रहा है।

११. सीता अष्टमी (जानकी-जन्म फाल्गुन वदी ८)

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्। अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति॥ —अथर्व० ७.३६.१

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा। यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन॥ —अथर्व० ७.३७.१

१२. दयानन्द बोधोत्सव (शिवरात्रि फाल्गुन वदी १४)

नोट—सामान्य यज्ञ के अतिरिक्त दयानन्द सप्ताह में यजुर्वेद के चुने हुए मन्त्रों से यज्ञ की योजना की जाए। विशेष प्रकार से नगर-कीर्तन, वैदिक सिद्धान्तों पर भजन, व्याख्यान, वेदपाठ, कथा एवं वैदिक साहित्य वितरण किया जाए।

१३. श्री लेखराम वीरतृतीया (फाल्गुनवदी ६)

विशेष यज्ञ करें। कोई विशेष आहुतियाँ पर्वपद्धति में नहीं हैं।

१४. वासन्ती नवसस्येष्टि (होलिकोत्सव)

फाल्गुन शु० १५ सामान्य व नित्य हवन करें। पूर्णिमा की आहुतियाँ दें। पश्चात् नवीन जौ मिलाकर नवसस्येष्टि की ३१ आहुतियाँ पृष्ठ १४९ से १५१ तक 'शतायुधाय०' से आरम्भ करके 'यदस्य कर्मणो०' तक दें।

संकल्प

प्रत्येक कर्मकाण्ड के आरम्भ में संकल्प उच्चारण की रीति सनातन काल से चली आई है। प्राचीन परिपाटी के अनुसार संकल्प का रूप निम्नलिखित है—

ओं तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीयेपरार्धे प्रथम दिने द्वितीयप्रहरार्धे श्रीवैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे (इयत्सु) वर्षेषु गतेषु भारतवर्षान्तर्गते पुण्यभूमावार्यावर्त्ते (अमुक) स्थाने (इयन्) मिते विक्रमाब्दे (इयन्) मिते श्रीमद्दयानन्दाब्दे (अमुक) अयने (अमुक) ऋतौ (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) शुभतिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) मण्डलान्तर्गते (अमुक) ग्रामवास्तव्यः

नेत्त्वा जहानि —अथर्व० १३।१।१२
हे प्रभो! मैं तुझे कदापि न त्यागूँ।

(अमुक) गोत्रोत्पन्न (अमुक) नामाऽहं (अमुक) पर्वकृत्यं (यज्ञ कृत्यं संस्कारकृत्यं) करिष्ये।

सोलह संस्कार

१. गर्भाधान। २. पुंसवन। ३. सीमन्तोन्नयन। ४. जातकर्म। ५. नामकरण। ६. निष्क्रमण। ७. अन्नप्राशन। ८. चूड़ाकर्म (मुण्डन)। ९. कर्णवेध। १०. उपनयन। ११. वेदारम्भ। १२. समावर्तन। १३. विवाह। १४. गृहाश्रम। १५. वानप्रस्थाश्रम। १६. संन्यासाश्रम।

इन सभी संस्कारों तथा अन्त्येष्टिविधि के लिए ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कार विधि देखनी चाहिए। आदि शंकराचार्य के अनुसार 'संस्कारो दोषापनयनं वा गुणाधानं वा'—इस जन्म तथा पूर्वजन्मों के दोषों को दूर कर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी गुणों को धारण करना ही संस्कार है। विविध समयों में विधेय=किये जानेवाले संस्कारों से जीवन ज्ञात व अज्ञातरूप से सुसंस्कृत होता है और मनुष्य व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में पवित्र व शुचि होकर अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति सुचारु रूप से करता है, अतः ऋषि दयानन्द की आज्ञानुसार सभी संस्कार समय-समय पर अवश्य ही विधिपूर्वक किये जाने चाहिएँ।

अग्निनाग्निः समिध्यते। —साम० ८४४
अग्नि से अग्नि जलता है।

भजन-संग्रह

प्रातःकालीन उद्‌बोधन

उठो मानव, आँख खोलो! सो चुके हो अब न सोना।
स्वर्ण की घड़ियाँ जिन्हें तुम खो चुके हो, अब न खोना॥
बहुत ही सुन्दर समय है, जागकर जीवन बिताओ।
पर कभी कर्त्तव्य पालन में न तुम आलस्य लाओ।
सबल होकर बहुत दुर्बल हो चुके हो, अब न होना॥
उठो............

मोह-निद्रा में तुम्हें जो दीखता यह मधुर सुख है,
अरे, यह सब स्वप्न है, बस, इसी सुख का अन्त दुःख है।
तुम अनेकों बार अब तक रो चुके हो, अब न रोना॥
उठो...........

मिल रहा है वही तुमको जोकि पहले से दिया है,
उसी का फल सामने है शुभ-अशुभ जैसा किया है।
बीज अनुचित कर्म के यदि बो चुके हो, अब न बोना॥
उठो............

एक होकर तुम अनेकों बन रहे हो वेषधारी,
कभी स्वामी, कभी सेवक, कभी राजा या भिखारी।
'पथिक' क्या-क्या अभी तक तुम हो चुके हो, अब न होना॥
उठो............

१

बेला अमृत गया, आलसी सो रहा, बन अभागा।
साथी सारे जगे, तू न जागा॥
झोलियाँ भर रहे भागवाले, लाखों पतितों ने जीवन सँभाले।
रंक राजा बने, भक्ति-रस में सने, कष्ट भागा॥
साथी.............

कर्म उत्तम थे नर-तन जो पाया, आलसी बनके हीरा गँवाया।
सौदा घाटे का कर, हाथ माथे पै धर, रोने लागा॥
साथी.............

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति। —यजुः० ३१।१८
मनुष्य उस परमात्मा को जानकर ही मोक्ष प्राप्त करता है।

धर्म वेदों का देखा न भाला, बेला अमृत गया ना सँभाला।
उल्टी हो गई मति, करके अपनी क्षति, चोला त्यागा॥
साथी.............

'देश' अब भी न तूने विचारा, सिर से ऋषियों का ऋण ना उतारा।
हंस का रूप था, गदला पानी पिया, बन के कागा॥
साथी.............

२

ओ३म् है जीवन हमारा, ओ३म् प्राणाधार है।
ओ३म् है कर्ता विधाता, ओ३म् पालनहार है॥
ओ३म् है दुःख का विनाशक, ओ३म् सर्वानन्द है।
ओ३म् है बल-तेजधारी, ओ३म् करुणाकन्द है॥
ओ३म् सबका पूज्य है, हम ओ३म् का पूजन करें।
ओ३म् ही के ध्यान से हम शुद्ध अपना मन करें॥
ओ३म् का गुरुमन्त्र जपने से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन॥
ओ३म् जपने से हमारा, ज्ञान बढ़ता जाएगा।
अन्त में यह ज्ञान हमको मुक्ति तक पहुँचाएगा॥

३

सन्ध्या से मैंने महानन्द पाया,
सन्ध्या से मन का चपलपन मिटाया।
सन्ध्या से फूला हृदयरूप पंकज,
उसे शान्त निर्मल सुधा-रस पिलाया॥
सन्ध्या से भीतर जगी दिव्य ज्योति,
जीवन का दीपक उसी से जलाया।
सन्ध्या से जलधार बरषी चहुँ ओर,
शुभ शान्तधारा में गोता लगाया॥
किया कंठ-शोधन सुजल आचमन से,
स्पर्श इन्द्रियों का किया, बल बढ़ाया।

अकर्मा दस्युः। —ऋ० १०।२२।८
कर्म न करनेवाला दस्यु है।

प्राची से ऊर्ध्वा दिशा तक निरन्तर,
विभिन्नास्त्रधर ईश रक्षक बनाया॥
उपस्थान से ब्रह्मद्वारे पहुँचकर,
सुखी दीर्घ आयु का वर-मन्त्र पाया।
गुरुमन्त्र से तेजोबल प्राप्त करके,
प्रणव-मार्ग पर देह का रथ चलाया॥
श्रद्धा से सर्वस्व भेंटा चढ़ाकर,
निज 'नाथ' शंकर को मस्तक झुकाया।
सन्ध्या से मैंने महानन्द पाया,
सन्ध्या से मन का चपलपन मिटाया॥

४

यही है प्रार्थना प्रभुवर! मेरा जीवन ये आला हो।
परोपकारी, सदाचारी व लम्बी आयुवाला हो॥
सरलता, शीलता, शुचिता हों भूषण मेरे जीवन के।
सचाई, सादगी, श्रद्धा को मन साँचे में ढाला हो॥
मेरा वेदोक्त हो जीवन, बनूँ मैं धर्म-अनुरागी।
रहूँ आज्ञा में वेदों की, न हुक्मेवेद टाला हो॥
तेरी भक्ति में हे भगवन्, लगा दूँ अपना मैं तन-मन।
दिखावे के लिए हाथों में थैली हो, न माला हो॥
तजूँ सब खोटे कर्मों को, तजूँ दुर्वासनाओं को।
तेरे विज्ञान दीपक का मेरे मन में उजाला हो॥
पिला दे मोक्ष की घुट्टी, मरण-जीवन से हो छुट्टी।
विनय अन्तिम ये सेवक की अगर मंजूरे वाला हो॥

५

भगवान तुम्हारी दुनिया का यह कैसा अजब नज़ारा है।
कहीं रेत के ऊँचे टीले हैं, कहीं गंग-यमुन की धारा है॥
कहीं पर्वत की ऊँची चोटी, आकाश से बातें करती है।
एक ओर समुन्दर के जल का नहीं पाता पारावारा है॥

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। —ऋ० १०।५३।६
मनुष्य बनो और दिव्य सन्तानों को जन्म दो।

छोटे-छोटे पक्षी प्रातः मस्तानी बोली बोल रहे।
और कोयल ने मीठे स्वर में प्रभु, तेरा नाम उचारा है॥
तू जाने कितना सुन्दर है, जब इतनी सुन्दर माया है।
हर जीवन का तू जीवन है, भक्तों का एक सहारा है॥
ज़ाहिर है ज़र्रे-ज़र्रे से कुदरत तेरी हे परम पिता।
जिसने खोजा उसने पाया, तू भक्तजनों का प्यारा है॥

६

कल्याण मेरे इस जीवन का भगवान् न जाने कब होगा?
जिससे भय-भ्रान्ति मिटा करती, वह ज्ञान न जाने कब होगा?
जिससे निज दोष दिखा करते, पापों अपराधों से डरते।
उस सद्विवेक का मानव में, सम्मान न जाने कब होगा॥
शीतलता जिससे आती है, सारी अशान्ति मिट जाती है।
वह नित्य प्राप्त है सोम-सुधा, पर पान न जाने कब होगा॥
अच्छे दिन बीते जाते हैं, गुरुजन बहु-विधि समझाते हैं।
भोगस्थल से योगस्थल को प्रस्थान न जाने कब होगा॥
वासना और चिन्ता मन में, फिर कुछ भी नहीं सताती हैं।
जिससे प्रभु, तेरा दर्शन हो, वह ध्यान न जाने कब होगा॥

७

प्रेमी बनकर प्रेम में, ईश्वर के गुण गाया कर।
मन-मन्दिर में मूरखा, झाड़ू नित्य लगाया कर॥
सोने में तो रैन बिताई, दिनभर करता पाप रहा।
इसी भाँति नष्ट तू जीवन, करता अपने आप रहा।
प्रातः समय उठ ध्यान से, सत्संग में नित जाया कर॥ १॥
नर-तन के चोले का पाना, बच्चों का कोई खेल नहीं।
जन्म-जन्म के शुभ कर्मों का, होता जब तक मेल नहीं।
नर-तन पाने के लिए, उत्तम कर्म कमाया कर॥ २॥
पास तेरे है दुखिया कोई, तूने मौज उड़ाई क्या।
भूखा-प्यासा पड़ा पड़ौसी, तूने रोटी खाई क्या।
पहले सबसे पूछकर, फिर तू भोजन खाया कर॥ ३॥

विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः। —ऋ० १।१५४।५
परमेश्वर के परमपद=मोक्ष में मधु का झरना है।

देख दया उस परमेश्वर की, वेदों का यह ज्ञान दिया।
'देश' तू मन में सोच ज़रा तो, कितना है कल्याण किया।
ओ३म् प्रभु का नाम है, नित उठकर उसको ध्याया कर॥४॥

८

न मैं धाम धरती, न धन चाहता हूँ।
कृपा का तेरी एक कण चाहता हूँ॥
रटे नाम तेरा, वह चाहूँ मैं रसना।
सुनें यश तेरा, वे श्रवण चाहता हूँ॥१॥
विमल ज्ञान-धारा से मस्तिष्क उर्वर।
वह श्रद्धा से भरपूर, मन चाहता हूँ॥२॥
करें दिव्य दर्शन, तेरा जो निरन्तर।
वही भाग्यशाली नयन चाहता हूँ॥३॥
नहीं चाहना है, मुझे स्वर्ग-छवि की।
मैं केवल तुम्हें, प्राण-धन! चाहता हूँ॥४॥
'प्रकाश' आत्मा में, अलौकिक तेरी ही।
परम ज्योति प्रत्येक क्षण चाहता हूँ॥५॥

सत्यार्थप्रकाश

प्राणों से भी बढ़कर प्यारा, है सत्यार्थप्रकाश हमारा।
मोह महातम हरनेवाला, ज्ञान-उजाला करनेवाला।
भव्य भावना भरनेवाला, दिव्य ज्योति का स्रोत सितारा॥
वैदिक पाठ पढ़ानेवाला, गत गौरव गुण गानेवाला।
फिर से सतयुग लानेवाला, दयानन्द ऋषि का नखतारा॥
शुभ सन्मार्ग सुझाया इसने, बुद्धिवाद उमगाया इसने।
गुरुडम का गढ़ ढाया इसने, जग में निर्भय भाव प्रसारा॥
सोता देश जगाया इसने, प्रेम-प्रवाह बहाया इसने।
स्वावलम्ब सिखलाया इसने, इसने सत्यधर्म विस्तारा॥

अरं कृण्वन्तु वेदिम्। —ऋ० १।१७०।४
वेदि [यज्ञवेदि, शरीरवेदि] को सजाओ।

कोटि-कोटि जनता का जीवन, अर्पित है इसपर समोद मन।
त्यागी सुधी, साधुओं का धन मानवता का सबल सहारा॥
वैदिक धर्म-ध्वजा फहरावें, बलिवेदी पर शीश चढ़ावें।
मरते-मरते गाते जावें, अजर अमर अक्षय ध्रुवतारा॥

वेद महिमा

बिना वेद नहिं मिला भेद उस जगदाधार खिलाड़ी का।
इधर-उधर फिर नाश करे क्यों मूर्ख आयु सारी का॥
वेदों की मर्याद छोड़कर अब तक कष्ट उठाये हैं।
काशी और हरिद्वार द्वारिका मथुरा धक्के खाये हैं॥
हुई सभ्यता नष्ट उतरकर शिखर से नीचे आये हैं।
कभी आर्य कहलाते थे, पर अब तो कुली कहाये हैं॥
हुआ पतन, बिन वेद वतन से रत्न गया सरदारी का॥
इधर.....................

श्रद्धा-पूरित मन से जिसने वेदों को पहिचान लिया।
निराकार अन्तर्यामी को उस व्यक्ति ने जान लिया॥
प्रकाश हुआ उसके मन में उसने ही जान विज्ञान लिया।
राजा और महाराजाओं ने गुरु उसी को मान लिया॥
बिना वेद कल्याण नहीं हो कभी किसी नर-नारी का॥
इधर.....................

पढ़ो वेद तुम आप, दूसरों को भी रोज पढ़ाते रहो।
तन-मन-धन सब-कुछ अपना इस ही के लिए लगाते रहो॥
स्वामीजी की तरह धर्म-प्रचार में उमर लगाते रहो।
गौतम कपिल कणाद आदि से ज्ञानी गुरु बनाते रहो॥
'वीरेन्द्र' मुक्ति का साधन होगा वेद तुम्हारी का॥
इधर.....................

स्वेन क्रतुना सं वदेत। —ऋ० १०।३१।२
मनुष्य अपने कर्म से बोले।

विश्व-कल्याण यज्ञ से

होता है सारे विश्व का कल्याण यज्ञ से।
जल्दी प्रसन्न होते हैं, भगवान् यज्ञ से॥
ऋषियों ने ऊँचा माना है स्थान यज्ञ का।
भगवान् का यह यज्ञ है भगवान् यज्ञ का॥
पाता है देवलोक को इन्सान यज्ञ से॥
होता है...............

जो कुछ भी डालो यज्ञ में खाते हैं अग्निदेव।
बादल बनाकर पानी बरसाते हैं अग्निदेव॥
पैदा अनाज करते हैं भगवान् यज्ञ से॥
होता है...............

होता है कन्या-दान भी, हाँ इसके सामने।
शक्ति व तेज है भरा इसके शुभ नाम में॥
पूजा है इसको कृष्ण ने, भगवान् राम ने।
मिलती है शक्ति, कीर्ति, सन्तान यज्ञ से॥
होता है...............

इसका पुजारी जो हो, पराजित न हो कभी।
दुःख और भय से डरने की आदत न हो कभी॥
होती हैं सारी मुश्किलें आसान यज्ञ से॥
होता है...............

चाहे अमीर हो कोई, चाहे गरीब है।
जो यज्ञ नित्य करता है वह खुशनसीब है॥
उपकारी मनुष्य बनता है महान् यज्ञ से॥
होता है...............

२

मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा,
जो सोते हैं उनको जगाये चला जा।
कुकर्मों की कीचड़ में जो फँस रहे हैं,

सुमृळीको न आ विश। —ऋ० १।९१।११
आनन्दप्रदाता परमेश्वर हमारे हृदय में प्रविष्ट हो जाए।

अविद्या-अँधेरे में जो धँस रहे हैं॥
उन्हें सत्य-पथ तू बताये चला जा॥
निराकार प्रभु है सभी में समाया,
सभी फिर हैं अपने न कोई पराया।
घृणा-फूट मन से मिटाये चला जा॥
चुराना नहीं लोभवश धन किसी का,
दुखाना नहीं तुम कभी मन किसी का।
ये सन्देश घर-घर सुनाये चला जा॥
जगत् युद्ध की ज्वाला में जल रहा है,
प्रबल चक्र अन्याय का चल रहा है।
मनुजता जगत् को सिखाये चला जा॥
अखिल विश्व में भावना भव्य भरके,
स्वकर्त्तव्य-उद्देश्य को पूर्ण करके।
तू ऋषिराज का ऋण चुकाये चला जा॥
समझ के जो चन्दन लगा धूल बैठे,
पड़े भ्रान्ति में, नाम तक भूल बैठे।
उन्हें आर्य फिर तू बनाए चला जा॥
'प्रकाशार्य' ग्रामों, गली, हाट, घर में,
नगर देश-देशान्तरों विश्व-भर में।
दयानन्द की जय मनाए चला जा॥
मधुर वेद................

वेद व श्रावणी का भजन

वेद ही जग में हमारा, ज्योति जीवन-सार है।
वेद ही सर्वस्व है और पूज्य प्राणाधार है॥
सत्यविद्या का विधाता, ज्ञान का गुरुगेय है।
मानवों का मुक्तिदाता, धर्म-धी का ध्येय है॥
वेद ही परमेश प्रभु का, प्रेम-पारावार है॥ १॥
ब्रह्मकुल का देवता है, राजकुल रक्षक रहा।
वैश्य-वंश-विभूषिता है, शूद्र-कुल-स्वामी महा॥
वेद ही वर्णाश्रमों का, आज भी आधार है॥ २॥

यन्ति प्रमादमतन्द्राः —साम० ७२१
जागरूक प्रकृष्ट आनन्द प्राप्त करते हैं।

श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव, पुण्य पावन पर्व है।
वेद-व्रत-स्वाध्याय वैभव, आज ही सुख सर्व है॥
वेदपाठी विप्रगण का, दिव्य दिन दातार है॥ ३॥
वेद का पाठन-पठन हो, वेद-वाद-विवाद हो।
वेद-हित जीवन-मरण हो, वेद-हित आह्लाद हो॥
आर्यजन का आज से, व्रत विश्व-वेद-प्रचार हो॥ ४॥
''विश्वभर को आर्य करना'' वेद का सन्देश है।
''मृत्यु से किंचित् न डरना'' ईश का आदेश है॥
सृष्टि-सागर में हमारा, वेद ही पतवार है॥ ५॥

महर्षि दयानन्द

भारत का कर गया बेड़ा पार, वो मस्ताना योगी।
सोतों को कर गया फिर बेदार, वो मस्ताना योगी॥
ईंटें और पत्थर खाये, गोली से नहीं घबराये।
निज घातक से कर गया प्यार, वो मस्ताना योगी॥ १॥
ईश्वर का नाम नहीं था, सेवा का काम नहीं था।
बहा गया शुद्ध प्रेम की धार, वो मस्ताना योगी॥ २॥
भूले थे वेद की वाणी, करते थे सब मनमानी।
जग से मिटा गया अत्याचार, वो मस्ताना योगी॥ ३॥
विधवा-उद्धार कराके, शुद्धि का मार्ग दिखाके।
कर गया दलितों का उद्धार, वो मस्ताना योगी॥ ४॥

२

धन्य है तुझ को ऐ ऋषि, तूने हमें बचा दिया।
सो-सो के लुट रहे थे हम, तूने हमें जगा दिया॥
तुझमें कुछ ऐसी बात थी, कि स्वामी तेरी बात पर।
कितने शहीद हो गये, कितनों ने सिर कटा दिया॥ १॥
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने, सीने पे खाईं गोलियाँ।
हँस-हँसके हंसराज ने तन-मन वो धन लुटा दिया॥ २॥

अक्षैर्मा दीव्यः। —ऋ० १०।३४।१३
जुआ मत खेलो।

अपने लहू से लेखराम, तेरी कहानी लिख गया।
तूने ही लाला लाजपत, शेरे बबर बना दिया॥ ३॥
तेरे दीवाने जिस घड़ी, दक्षिण दिशा को चल दिये।
अचरज में लोग रह गये, दुनिया का दिल हिला दिया॥ ४॥
अन्धों को आँख मिल गई, मुर्दों में जान आ गई।
जादू-सा क्या चला दिया, अमृत-सा क्या पिला दिया॥ ५॥

३

ऋषिवर दयानन्द यदि होते

ऋषिवर दयानन्द यदि होते घर-घर होता वेद-प्रचार।
ग्राम-ग्राम में गुरुकुल होते वेदों के अनुसार।
बालक और बालिका पढ़ते अलग-अलग चटसार॥ १॥
गोवध यहाँ बन्द कर देती जनता की सरकार।
मूक और निर्दोष पशुओं पर चलती नहीं कटार॥ २॥
मदिरा-मांस न मछली-अण्डा बिकते कहीं बजार।
दूध-दही और माखन होता गोरस की भरमार॥ ३॥
पंचयज्ञ घर-घर में होते, वृद्धों का सत्कार।
विद्वानों की पूजा होती, मूरख खाते मार॥ ४॥
राजसभा के सदस्य होते आस्तिक और उदार।
प्रधानमन्त्री न्याय-तुला पर करते सत्य विचार॥ ५॥
पाकिस्तान न बनता, होती अंग्रेजों की हार।
जिन्ना आप शुद्ध हो जाते लेकर सब परिवार॥ ६॥
वीर साहसी सैनिक दल के अगणित वीर अपार।
आर्यावर्त्त की रक्षा करते खल-दल को ललकार॥ ७॥
ओ३म् ध्वजा बन राष्ट्र-पताका करती गगन-विहार।
ठीक हिमालय की चोटी पर होती जय-जयकार॥ ८॥
गुडमॉर्निंग सलाम न होती, जाते राम जुहार।
'वर्मा' जगत् नमस्ते करता झुक-झुक बारम्बार॥ ९॥

—श्री पोखपालसिंह वर्मा

जातवेदः पुनीहि मा। —यजुः० १९।३९
हे सर्वज्ञ प्रभो! आप मेरे जीवन को पवित्र कीजिए।

४

दयानन्द देव वेदों का उजाला लेके आये थे।
करों में ओ३म् की पावन पताका लेके आये थे॥

न थे धन-धाम मठ-मन्दिर,
न सँग चेली न चेला था।
हृदय में वे अटल विश्वास,
प्रभु का लेके आये थे॥ १॥

गौ, विधवा दलित दुखिया,
अनाथों दीनजन के हित।
नयन में अश्रु-कण, मानस
में करुणा लेके आये थे॥ २॥

अविद्या-सिन्धु से अगणित,
जनों के पार करने को।
परम सुखदायिनी सद्ज्ञान,
नौका लेके आये थे॥ ३॥

कोई माने न माने, सच
तो यह ऋषिराज ही पहले—
स्वराज-स्थापना का मन्त्र,
सच्चा लेके आये थे॥ ४॥

पिलाया जहर का प्याला,
उन्हीं नादान लोगों ने—
कि वे जिनके लिए अमृत का
प्याला लेके आये थे॥ ५॥

'प्रकाशादर्श' शिक्षा का,
पुनः विस्तार करने को।
वही प्राचीन गुरुकुल का,
सन्देशा लेके आये थे॥ ६॥

ओ३म् क्रतो स्मर। —यजुः० ४०।१५
हे कर्मशील जीव! तू ओम् का स्मरण कर।

५

वेदों का डंका आलम में, बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।
हर जगह ओ३म् का झंडा फिर फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने॥
अज्ञान अविद्या की हर सू, घनघोर घटाएँ छाई थीं।
कर नष्ट उन्हें जग में प्रकाश, फैला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ १॥
सिर पर तूफ़ान बला का था, नज़रों से दूर किनारा था।
बनकर मल्लाह किनारे पर, पहुँचा दिया ऋषि दयानन्द ने॥ २॥
घुस गये लुटेरे घर में थे, सब माल लूटकर ले-जाते।
सद्शुक्र हाथ सोतों का पकड़ बिठला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ३॥
मक्कारी दग़ा फरेबी से जो माल मुफ़्त का खाते थे।
सब पोल खोलकर दिल उनका, दहला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ४॥
उड़ गये होश मतवालों के, मैदान छोड़कर भाग गये।
हथियार तर्क का निकाल जब चमका दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ५॥
कई कबरों में सिर को पटकते थे, कई दैरो हरम में भटकते थे।
दे ज्ञान उन्हें मुक्ति का मार्ग, दिखला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ६॥
करते थे हमेशा चीख-चीख, तौहीन वेद अक़दस की।
सिर उनका वेदों के आगे, झुकवा दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ७॥
सब छोड़ चुके थे धर्म-कर्म, गौरव गुमान ऋषि-मुनियों का।
फिर सन्ध्या हवन-यज्ञ करना, सिखला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ८॥
विद्यालय गुरुकुल खुलवाये, कायम हर जगह समाज किये।
आदर्श पुरातन शिक्षा का, सिखला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ ९॥
बलिदान किया बलिवेदी पर, जीवन 'प्रकाश' हँसते-हँसते।
सच्चे रहबर बनकर सबको, दिखला दिया ऋषि दयानन्द ने॥ १०॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति। —यजु:० ३२।३
उस परमात्मा की मूर्त्ति नहीं है।

६

नादान लोगों ने उस,
योगी का भेद न पाया॥
कोई कहे मत आ इस द्वारे,
विषदाता कह पत्थर मारे।
क्या जानें किस्मत के मारे,
सुधा कलश ले-आया॥ १॥
गाली देते नहीं लजाये,
विष का प्याला लेकर आये।
योगी मेरा प्रेम दीवाना,
विष का घूँट उड़ाया॥ २॥
रोम-रोम बन फोड़ा बोला,
सेवा के कारण था चोला।
खूब करी प्यारे ने लीला,
उसका उसे चढ़ाया॥ ३॥
रोम-रोम का बना फवारा,
फूट पड़ी अमृत की धारा।
एक बूँद ने नास्तिक मुनि का,
सारा मोह बहाया॥ ४॥
बार-बार नर जीवन पाऊँ,
बार-बार बलिदान चढ़ाऊँ।
ऋण तो भी ऋषि, तेरा मुझसे,
जाए नहीं चुकाया॥ ५॥

अग्ने वर्चस्विनं कृणु। —अथर्व० ३।२२।३
हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! मुझे तेजस्वी बना दे।

ओ३म् ध्वज गीत

जयति ओ३म् ध्वज व्योम-बिहारी।
विश्व-प्रेम-प्रतिमा अति प्यारी॥

सत्य-सुधा बरसानेवाला, स्नेह-लता सरसानेवाला।
सौम्य-सुमन विकसानेवाला। विश्व विमोहक भव-भय-हारी॥
जयति...............

इसके नीचे बढ़ें अभय मन, सत्पथ पर सब धर्म-धुरी-जन।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन। आलोकित होवें दिशि सारी॥
जयति...............

इससे सारे क्लेश शमन हों, दुर्मति-दानव द्वेष दमन हों।
अति उज्ज्वल अति पावन मन हो। प्रेम-तरंग बहे सुखकारी॥
जयति...............

इसी ध्वजा के नीचे आकर, ऊँच-नीच का भेद भुलाकर।
मिले विश्व मुद मंगल गाकर, पन्थाई पाखण्ड बिसारी॥
जयति...............

इस ध्वज को हम लेकर कर में, भर दें वेद-ज्ञान घर-घर में।
सुभग शान्ति फैले जगभर में, मिटे अविद्या की अँधियारी॥
जयति...............

विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ावें, सत्य अहिंसा को अपनावें।
जग में जीवन-ज्योति जगावें, त्यागपूर्ण हो वृत्ति हमारी॥
जयति...............

आर्यजाति का सुयश अक्षय हो, आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।
आर्यजनों का ध्रुव निश्चय हो, आर्य बनाएँ वसुधा सारी॥
जयति...............

कृधि मा देववन्तम्। —ऋ० ६।४७।१०
हे प्रभो! मुझे आस्तिक बना दो।

जातकर्म संस्कार के समय

हुआ शुभ जन्म लालन का, बधाई है बधाई है।
करें गुणगान ईश्वर का, बधाई है, बधाई है॥
पढ़े विद्या ये गुरुकुल में, बने विद्वान् वेदों का।
करे ब्रह्मचर्य का पालन, बधाई है, बधाई है॥
धनुर्धारी हो अर्जुन-सा, बली हो भीष्म के जैसा।
हो दानी कर्ण के सानी, बधाई है, बधाई है॥
करे पालन पितु आज्ञा हज़ारों कष्ट सहकर भी।
हरे दुःख-द्वन्द्व जननी का, बधाई है, बधाई है॥
बने श्रीराम-सा बुद्धिमान्, रहे आरोग्य जीवन में।
अमर संसार में हो बस, बधाई है, बधाई है॥
है सौ-सौ बार आशीर्वाद इसको नित्य 'गुलशन' का।
हो वैदिक वीर भारत में, बधाई है, बधाई है॥

बालक के जन्मदिन पर बधाई

इस कुल का यह दीपक प्यारा बालक आयुष्मान् हो।
तेजस्वी, वर्चस्वी, निर्भय, सर्वोत्तम विद्वान् हो॥
बने सुमन-सा कोमल सुन्दर, दानी बनकर दान करे।
दुष्टों से ना डरे कभी यह, श्रेष्ठों का सम्मान करे।
मानव धर्म समझकर चलनेवाला चतुर सुजान हो॥
इस कुल...............

विजय चौतरफा जय हो इसकी, पावे सुख-सम्मान भी।
शत आयु से अधिक हो जीवन, करे धर्म हित दान भी।
नेता बने यह देश अपने का, जगभर में सम्मान हो॥
इस कुल...............

परम भक्त बन परम प्रभु का, अपना यश फैलाये यह।
मात-पिता की सेवा कर, सच्चा 'सेवक' कहलाये यह।
नाम अमर हो जग में इसका, सर्वगुणों की खान हो॥
इस कुल...............

मा भेम शवसस्पते। —ऋ० १।११।२
हे शक्तिपुञ्ज प्रभो! हम निडर बनें।

बधाई गीत

प्रभु-कृपा से शुभ दिन आज का आया बधाई हो।
चमन में बुलबुलों का प्रेम से गाना बधाई हो॥
फूले-फले यह सुन्दर बेल और मीठा हो फल इसका।
बड़े ही प्रेम से यह यज्ञ करवाया, बधाई हो॥
पिता-माता का सेवक हो, धर्म में लगन हो इसकी।
सभी परिवार के नर नारि को शुभ दिन बधाई हो॥
सदाचारी बने विद्वान् और बलवान् यह बालक।
सभी का प्रेम से गाना, बधाई हो, बधाई हो॥

बेटी की विदाई के समय

कुल की परम्परा मर्याद, निभाये जाना बेटी!
अब सास श्वसुर घर जाओ, मत रोओ और रुलाओ!!
अपने बचपन का संसार, भुलाये जाना बेटी!!
कुल की०

सब काम समय पर करना, चीजें जहाँ की तहाँ धरना!
सबको उत्तम भोजन परस, जिमाये जाना बेटी!!
कुल की०

जो दें प्रभु सम्पत्ति भारी, तो भूल न जाना प्यारी!
अपने देश धर्म हित दान, दिलाये जाना बेटी!!
कुल की०

घर में आ जाय गरीबी तो धर्म न तजना बीबी!
टोटे में साहस से काम चलाये जाना बेटी!!
कुल की०

मत फैशन में फँस जाना, मत फूहड़पन दरसाना!
उत्तम गृहिणी का शृंगार, सजाये जाना बेटी!!
कुल की०

यह शिक्षा-सार बताया, सुख होगा अगर निभाया!
सबको कवि 'शीतल' के गीत सुनाये जाना बेटी!!
कुल की०

यद् वदामि मधुमत्तद् वदामि। —अथर्व० १२।१।५८
मैं जो कुछ बोलूँ मीठा बोलूँ।

२

नेकी के कर्म कमा जा रे, दुनिया से जानेवाले !
यह तन तेरा तरुवर है, नेकी एक क्षीर-सागर है।
इस तरुवर के फल खा जा रे॥ दुनिया से०
यह धन-यौवन संसारी है, बस दो दिन की फुलवारी है।
कोई खुशरंग फूल खिला जा रे॥ दुनिया से०
तुझसे धन अन्त छुटेगा, जाने किस राह लुटेगा।
इसे परहित हेत लगा जा रे॥ दुनिया से०
जग-सेवा है सुख-देवा, कर दीन-दुखी की सेवा।
यश पाना है तो पा जा रे॥ दुनिया से०
यह कंचन काया तेरी, हो अन्त राख की ढेरी।
इससे जो बने बना जा रे॥ दुनिया से०

पण्डित लेखराम

लिफ़ाफ़ा हाथ में लाकर, दिया जिस वक्त माता ने।
लगे झट खोलकर पढ़ने, दिया है छोड़ खाने को॥
लिखा था उसमें, कुछ हिन्दू मुसलमाँ होनेवाले हैं।
तो धोकर हाथ जल्दी से हुए तैयार जाने को॥ १॥
कहा माता ने—ऐ बेटा, अभी तू आके बैठा है।
अभी फिर हो गया तैयार, तू परदेश जाने को॥ २॥
तू माता और पत्नी को, कुछ ऐसा भूल जाता है।
नहीं आता महीनों ही, हमें सूरत दिखाने को॥ ३॥
भले सुधबुध हमारी तू, न लेता है, न ले बेटा।
तेरा बेटा लबे दम है, नहीं खाता है खाने को॥ ४॥
मेरा इकलौता बेटा मरता, है तो मरने दे लेकिन।
मैं जाता सैकड़ों ही लाल जाति के बचाने को॥ ५॥
तभी सेवक 'मुसाफिर' भी सवारी लेके आ पहुँचा।
लो माताजी नमस्ते लो, मैं हूँ तैयार जाने को॥ ६॥
सुबह को तार यह पहुँचा, कि लड़का चल बसा घर से।
तो बोले—फिक्र ही क्या है, हरइक आता है जाने को॥ ७॥
वही जीवन सफल है काम आये देश-जाति के।
करूँ अर्पण हमेशा प्राण, धर्म उनका बचाने को॥ ८॥

जानता सं गमेमहि। —ऋ० ५।५१।१५
हम विद्वानों का सङ्ग करें।

आर्यवीर दल ध्वजगान

ध्वजेयं मुदा वर्धते व्योमवातैः समुड्डीयमानान्तरिक्षे विशाले।
महामण्डले दीप्ति-दिव्यारुणाभे सुभासैरवेर्भासते-ओम् पताका॥
प्रबुद्धार्यवर्तैक-देशे प्रशस्ता समस्तार्यवीरैर्धृतायाः समन्तात्।
पुरा ज्ञानज्योतिः प्रदत्तं पृथिव्यां सुधावेदवाण्या नुता गीयते च॥
समुद्धर्त्तुकामा वयञ्चार्यवीराः समुत्थाप्यतां विश्वमेतत्प्रसुप्तम्।
इयं आर्यराष्ट्रांगभूता ध्वजाऽऽस्ते पराशक्तिरूपा ददातु स्वशक्तिम्॥
महा-मंगले विश्वशान्त्येकमूर्ते सुकीर्तिः सदा वर्धतां ते प्रशस्या।
समुद्घोषणा घोष्यते वीरघोषैः विजेजीयतां नः पताकाऽपतापा॥

स्नान के मन्त्र

स्नान करते समय परमेश्वर का स्मरण एवं उससे प्रार्थना करना बहुत अधिक आनन्ददायक होता है। स्नान करते समय उच्चारणीय कुछ मन्त्र इस प्रकार हैं—

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ १॥ —[यजुः० ३६।१२]

ओम् आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ २॥ —[अथर्व० १।५।१]

ओं शं न आपो धन्वन्या३ः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥ ३॥ —[अथर्व० १।६।४]

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥ ४॥ —[यजुः० ३०।३]

यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥

अहं गोपतिः स्याम्। —साम० १८३५
मैं गौओं=इन्द्रियों का स्वामी बनूँ।

सर्व ऋतु-अनुकूल हवन-सामग्री

(१) हरड़, (२) बहेड़ा, (३) आँवला, (४) गिलोय, (५) तुलसी, (६) चन्दन-चूर्ण, (७) अगर, (८) तगर, (९) गुग्गुलु, (१०) जायफल, (११) जावित्री, (१२) लौंग, (१३) गोला (पका हुआ नारियल), (१४) छुहारा, (१५) यव (जौ), (१६) नागरमोथा, (१७) कपूरकचरी, (१८) किशमिश, (१९) बालछड़, (२०) तुम्बरु, (२१) सुपारी, (२२) नीम-पत्र, (२३) राल, (२४) इन्द्रजौ, (२५) चावल, (२६) जटामाँसी, (२७) उड़द, (२८) मूँग, (२९) कपूर, (३०) गुड़-शक्कर, बूरा या खाँड, (३१) गुलाब के फूल, (३२) गेंदे के फूल, (३३) देशी घी (गौघृत)।

यज्ञ की वस्तुएँ

(१) देशी घी=२५० ग्राम, (२) हवन सामग्री=५०० ग्राम, (३) समिधा (आम, ढाक या पीपल की सूखी लकड़ी) ढाई किलो, (४) कपूर, (५) रुई, (६) दियासलाई, (७) रोली, हल्दी, चन्दन या केसर, (८) चावल, (९) फूल, (१०) यज्ञोपवीत, (११) हवनकुण्ड, (१२) दीपक, (१३) पात्र (कटोरी=४, घी का पात्र, चम्मच=४, बड़ी चम्मच=१, लोटा=१, तश्तरी=४)।

विवाह-संस्कार की सामग्री

(१) देशी घी=५०० ग्राम, (२) हवन-सामग्री=१ किलो, (३) समिधा=५ किलो, (४) कपूर, (५) रुई, (६) यज्ञोपवीत, (७) रोली या केसर, (८) सिन्दूर, (९) चावल, (१०) फूल= २५० ग्राम, (११) खील=२५० ग्राम, (१२) दही=१०० ग्राम, (१३) मधु (शहद), (१४) पत्थर (शिला), (१५) घड़ा, (१६) आम की डाली, (१७) नारियल, (१८) दियासलाई, (१९) दो तौलिये, (२०) दो आसन, (२१) बड़ी फूलमाला=४, (२२) हवनकुण्ड (बड़ा), (२३) दीपक, (२४) मिष्टान्न, (२५) पात्र (कटोरी=६, गिलास=४, लोटा=१, थाली=३, घी का पात्र, बड़ा चम्मच, तश्तरी=४)।

यज्ञरहस्य

लेखक : जगदीश्वरानन्द सरस्वती

यज्ञ का आरम्भ कहाँ से ?

यज्ञ का आरम्भ कहाँ से हो? आचमन से अथवा ईश्वरस्तुति-प्रार्थनोपासना से? आजकल एक नई प्रथा चल पड़ी है। यज्ञ करने और करानेवाले पहले गायत्री-मन्त्र का गान करते हैं, जिसमें न कोई स्वर होता है, न ताल। वे आरम्भ में ही '**ओमभूभुर्वः स्वः**' बोलते हैं, फिर इसका पद्य में अर्थ बोलते हैं। वह परिपाटी त्याज्य है।

अनेक पुरोहित और विद्वान् पहले ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शन्तिकारणम् का पाठ करने के पश्चात् आचमन, अङ्गस्पर्श आदि करते हैं। यह प्रकार भी अशुद्ध है। **आचानान्तेन कर्म कुर्यात्**—आचमन के पश्चात् यज्ञ आरम्भ करना चाहिए, इस शास्त्रीय वचन के अनुसार आचमन पहले होगा।

सबसे बड़े याज्ञिक सम्राट् याज्ञवल्क्यजी लिखते हैं—

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति—मेध्या वा आपो—
तस्माद्वा अप उपस्पृशति॥ —शत० ब्रा० १। १। १। १

मनुष्य अपवित्र है, क्योंकि वह झूठ बोलता है। जल पवित्र है, इसलिए [पवित्र होने के लिए] वह सर्वप्रथम आचमन[१] करता है।

यज्ञ का क्रम यह है। बृहद्यज्ञों और संस्कारों में जहाँ पुरोहित आदि की आवश्यकता होती है, वहाँ सर्वप्रथम ऋत्विक् वरण होगा। तत्पश्चात् आचमन, अङ्गस्पर्श होगा। इतने कर्म के पश्चात् ईश्वरस्तुति-प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण का पाठ होगा।

संस्कारविधि में क्रम नहीं है। वहाँ तो ईश्वरस्तुतिप्रार्थना-उपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण को एक साथ इसलिए लिख दिया है कि बार-बार न लिखना पड़े। शान्तिकरण के अन्त में टिप्पणी में लिख भी दिया है—

"इस स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण को जहाँ-जहाँ प्रतीक धरें, वहाँ-वहँ करना होगा।"

---

१. '**उपस्पृशति**' का अर्थ पाश्चात्यों ने और उनका अन्धानुकरण करनेवाले अनेक भारतीयों ने 'जल को छूता है', ऐसा किया है। यह अर्थ अशुद्ध है। '**उपस्पृशति**' का शुद्ध अर्थ है, 'आचमन करता है।'

यज्ञ ब्रह्माण्ड की नक़्ल है

यज्ञ ब्रह्माण्ड की अनुकृति=नक़्ल है। ब्रह्माण्ड में यज्ञ हो रहा है। परमात्मा का यज्ञ निरन्तर चल रहा है, अतः परमात्मा के अमृतपुत्र और पुत्रियाँ भी यज्ञ करें।

स्तुतिप्रार्थनोपासना आदि के पश्चात् **'ओं भूर्भवः स्वः'** इस मन्त्र से दीपक प्रदीप्त करें। इस मन्त्र का अर्थ है—अब हम सृष्टिविद्या का वर्णन करने लगे हैं। ये **भूः**=पृथिवीलोक, **भुवः**=अन्तरिक्षलोक और **स्वः**=आदित्यलोक [द्युलोक] कैसे बने?

यज्ञकुण्ड में तीन मेखलाएँ होती हैं। लोक तीन ही हैं, इसलिए मेखला भी तीन ही हैं। जब इन मेखलाओं का निर्माण होता है तब ये पाँच अंगुल चौड़ी और पाँच अंगुल ऊँची होती हैं। आकाश आदि भूत पाँच ही हैं, इसलिए मेखला भी पाँच-पाँच अंगुल की हैं। आगे चलकर आठ-आठ अंगुल की तीन समिधाएँ अर्पित की जाती हैं। वसु आठ है, अतः समिधाएँ भी आठ-आठ अंगुल की हैं। लोक तीन हैं, इसलिए समिधाएँ भी तीन ही हैं।

दीपक प्रज्वलित करने से पूर्व ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

'ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला' इत्यादि।

यहाँ यज्ञ की प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि स्वामीजी को शूद्रों से इतनी घृणा थी कि उनके घर से अग्नि लाने के लिए भी नहीं लिखा है। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि ऋषि दयानन्द तो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम पुरुष हैं, जिन्होंने छुआछूत का विरोध किया और वेदों के पठन-पाठन का द्वार सबके लिए खोल दिया, अतः उनपर यह आक्षेप सर्वथा निराधार है।

यहाँ जो अग्नि लाई जाएगी, वह चूल्हे की अग्नि नहीं है। यह अग्नि यज्ञ की अग्नि है और यज्ञ की भी वह अग्नि जो यज्ञ- कुण्ड में चौबीसों घण्टे विद्यमान रहती है, बुझती नहीं है। शूद्र का अर्थ है, जिसे पढ़ाने से भी विद्या न आये। उसके घर में यज्ञ होता ही नहीं है, अतः वहाँ से अग्नि लाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

चार मन्त्रों से तीन समिधाएँ

यज्ञ करते हुए चार मन्त्रों से तीन समिधा चढ़ाने का विधान है। **'अयन्त इध्म आत्मा'** इस मन्त्र से पहली समिधा, **'समिधाग्निम्'**

और '**सुसमिद्धाय शोचिषे**' मन्त्र से दूसरी समिधा। यहाँ विशेष बात यह है कि पहले मन्त्र में **जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम**। इस मन्त्र से और **सुसमिद्धाय**—इस मन्त्र से, अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी।

यहाँ अधिकांश पुरोहितों और विद्वानों ने 'जुहोतन' के पश्चात् '**स्वाहा**' और '**इदमग्नये—इदन्न मम**' कहना ही बन्द कर दिया है। यहाँ यज्ञ करने और करानेवालों की आपत्ति यह है कि जब आहुति नहीं दी तब स्वाहा आदि क्यों बोला जाए?

इसका समाधान यह है—

१. हमारे आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती हैं, अतः आचार्य ने जो लिखा है, वह उचित है और हमें वैसा ही करना चाहिए। यदि महर्षिजी की इच्छा होती कि इस मन्त्र में '**स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम**' यह भाग न बोला जाए, तो ऋषि दयानन्द वैसा ही निर्देश कर देते, परन्तु स्वामीजी ने वैसा कोई निर्देश नहीं किया है, अतः दोनों मन्त्रों को बोलकर ही आहुति देनी चाहिए।

जहाँ स्वाहा हो वहाँ आहुति देनी चाहिए, इस भ्रान्ति का कारण स्वाहा का ठीक अर्थ न समझना है। स्वाहा का अर्थ है—

१. स्वाहा=सु+आ+हा—अपनी **सु**=उत्तम वस्तुओं का **आ**=पूर्णरूप से **हा**=त्याग करना। यज्ञ में डालडा नहीं, शुद्ध घी होना चाहिए, यदि गाय का घी हो तो और भी उत्तम! सामग्री भी उत्तम हो। आजकल की पन्द्रह-बीस रुपये किलोवाली सामग्री में जायफल, जावित्री, लौंग, गूगल, लोहबाण कौन डालेगा? बर्तन भी चमकते हुए हों, आसन उत्तम हों। पहननेवाले वस्त्र भी पैण्ट आदि न होकर यज्ञिय हों।

२. स्वाहा का अर्थ है—सु+आह—सु=उत्तम आह=कहना—मीठा बोलना, मधुर बोलना, प्रिय और हितकर बोलना, कटु और कड़वा न बोलना।

३. स्वाहा=स्वं प्रति आह=अपने प्रति कहना। आत्मनिरीक्षण करना, आत्मचिन्तन करना। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है, इत्यादि शाश्वत प्रश्नों पर विचार करना।

४. स्वाहा का अर्थ आहुति देना भी है, परन्तु केवल आहुति देना ही अर्थ नहीं है, आहुति देना भी एक अर्थ है। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, सोच-समझकर ठीक-ठीक कर रहा हूँ।

यज्ञ ब्रह्माण्ड की अनुकृति है। द्युलोक का अभिमानी देवता

[जड़ देवता] सूर्य है। पृथिवीलोक का देवता अग्नि है। अन्तरिक्ष-लोक के दो देवता हैं—विद्युत् और वायु। दो देवताओं के कारण दूसरी समिधा के लिए दो मन्त्र रक्खे गये हैं।

यज्ञ तीन आश्रमों में किया जाता है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ में। संन्यासी यज्ञ से मुक्त होता है। ब्रह्मचारी अकेला होता है, वानप्रस्थ भी अपवाद को छोड़कर प्रायः अकेला ही होता है। गृहस्थ में पति-पत्नी दो होते हैं, इस कारण से भी दूसरी समिधा के लिए दो मन्त्र रक्खे हैं।

दो समिधाओं से एक आहुति देने का एक अन्य कारण भी है। अग्नि तीन प्रकार की है—इद्ध, समिद्ध और सुसमिद्ध। इद्ध अग्नि वह है, जो बहुत कम जल रही है, धुआँ भी निकल रहा है। ऐसी अग्नि में आहुति देने पर वह आहुति '**इदमग्नये—इदन्न मम**' केवल पृथिवीलोक तक जाएगी। समिद्ध अग्नि वह है, जिसमें धुआँ नहीं है, 'इद्ध' की अपेक्षा कुछ अधिक जल रही है। ऐसी अग्नि में आहुति देने से वह आहुति '**इदमग्नये जावेदसे—इदन्न मम**' अन्तरिक्षलोक तक जाएगी। सुसमिद्ध अग्नि वह है, जिसमें '**काली कराली च मनोजवा च**' ज्वालाएँ निकल रही हैं, लिपटें उठ रही हैं, अत्यन्त तीव्र और प्रचण्ड है। ऐसी अग्नि में आहुति देने का फल होगा कि वे आहुतियाँ '**इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम**' द्युलोक तक जाएँगी।

यदि दूसरे मन्त्र में '**स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम**', इस अंश को नहीं बोला जाता है तो सारा क्रम टूट जाएगा।

इन सभी बातों को लक्ष्य में रखकर महर्षि दयानन्द ने दो मन्त्रों से एक आहुति का विधान किया है, जो उचित है।

ये तीन समिधाएँ अंगुष्ठ से अधिक मोटी नहीं होनी चाहिएँ। ये आठ-आठ अंगुल की होनी चाहिएँ, न इससे छोटी और न बड़ी। ये आठ-आठ अंगुल की ही क्यों हैं? एक समाधान तो आरम्भ में लिख दिया है। दूसरा समाधान अध्यात्म की दृष्टि से यहाँ लिख रहा हूँ।

समिधा जब तक कुण्ड के बाहर होती है तब तक न उसमें प्रकाश होता है, न दाहक शक्ति। हमारे हाथ छू जाएँ तो हाथ को नहीं जलाती, वस्त्र छू जाए तो उसे भी नहीं जलाती, परन्तु जब यह समिधा यज्ञकुण्ड में पहुँच जाती है, तब इसमें प्रकाश आ जाता है, जलाने की शक्ति आ जाती है, अब यह अग्नि बन जाती है। जैसे इन समिधाओं को अग्नि में अर्पित करने से वे चमक उठती हैं, इसी प्रकार यदि हम

आठ गुणों को अपनी आत्मा में धारण कर लें तो हमारी आत्मा भी देदीप्यमान हो उठेगी, उसमें प्रकाश, ओज और तेज आ जाएगा।

पुरुषो वाव यज्ञः—मनुष्य स्वयं एक यज्ञ है। हमारा शरीर एक कुण्ड है, उसमें आत्मारूपी ज्योति जल रही है। इस आत्मा में आठ गुणों का आधान करें। वे आठ गुण ये हैं—

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्तिः कृतज्ञता च॥
—विदुरनीतिः

आठ गुण हैं जो मनुष्य को प्रदीप्त कर देते हैं, उसके यश को, उसकी कीर्ति को देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में पहुँचा देते हैं। वे गुण हैं—

१. **प्रज्ञा**=बुद्धि—**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य**, जिसके पास बुद्धि है, उसके पास बल है। बुद्धि से छोटे-छोटे बालक वह काम कर देते हैं, जो बड़े-बड़े भी नहीं कर पाते। बुद्धि के बल से मनुष्य आकाश में उड़ रहा है, पानी में तैर रहा है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि के कौशल से पक्षीरूपी वायुयान और मछली-जैसी पनडुब्बियाँ बनाई हैं। अपने बुद्धिबल से वह सिंह-जैसे गोली के सम्मुख चलनेवाले और हाथी-जैसे विशालकाय प्राणी को भी वश में कर लेता है। यह पहला गुण है जो मनुष्य को चमका देता है।

२. **कौल्यम्**—कुल से भी मनुष्य चमकता है। किसी का परिचय देते हुए कहा जाए कि यह स्वामी श्रद्धानन्दजी का पौत्र है अथवा यह भीमसेनी काजलवालों का पुत्र या पौत्र है तो उसके प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है, अतः कुल से भी मनुष्य की कीर्ति होती है। दूसरी ओर मनुष्य छोटे-से कुल में पैदा होकर स्वयं भी ऊँचा उठता है और अपने कुल को भी चार चाँद लगा देता है। दानवीर कर्ण छोटे-से कुल में उत्पन्न हुआ, नेपोलियन बोनापार्ट छोटे-से कुल में उत्पन्न हुआ और फ्रांस का राजा बन गया। डॉ० भीमराव अम्बेडकर छोटे-से कुल में उत्पन्न होकर भारत के विधान का निर्माता बन गया।

३. **दमः**—चञ्चल मन को वश में करना। यह मन बहुत भागता है, लम्बी-चौड़ी दौड़ें लगता है। कभी हिमालय की चोटी पर पहुँचता है तो कभी समुद्र की गहराइयों को नापता है। कभी लाखें रुपयों को ठोकर मार देता है कभी एक रुपये के लिए मर जाता है। यह कभी तोला है तो पलभर में माशा हो जाता है। इस चञ्चल मन को वश में

करने का नाम **दम** है। इस मन को शिवसङ्कल्पमय बनाना है। इसके लिए प्रभु से प्रार्थना करनी है—**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**—मेरा मन शिवसङ्कल्पवाला हो। जब यह मन वश में हो जाता है तब बड़े-से-बड़े भय और प्रलोभन मनुष्य को उसके पथ से विचलित नहीं कर सकते। महर्षि दयानन्द को हलाहल विष के प्याले, ईंट-पत्थरों की बौछार और लाखों की गद्दियों के प्रलोभन उनके मार्ग से हटा नहीं सके। यह दम—मन की साधना भी मनुष्य की कीर्ति को चतुर्दिक् में फैला देती है।

४. **श्रुतम्**—श्रुतम् का अर्थ है—वेदादि शास्त्रों को पढ़ना और सुनना। पढ़-पढ़कर मनुष्य विद्वान् बनता है और सुन-सुनकर बहुश्रुत बन जाता है। वेदादि शास्त्रों के उपदेशों को सुनना भी चाहिए। आर्यजगत् में सनु-सुनकर भी अनेक व्यक्ति विद्वान् हो गये और उपदशेक बन गये। आर्यसामज, नया बाँस, खारी बावली, दिल्ली का सेवक चन्दनसिंह महोपदेशक बन गया। आर्यसमाज बी ब्लाक, जनकपुरी, नई दिल्ली का सेवक जगमाल पुरोहित बन गया। श्रुतम् भी मनुष्य की कीर्ति को फैलाता है, अतः खूब सुनना चाहिए।

५. **पराक्रमः**—पराक्रम भी मनुष्य के यश का विस्तार करता है। कायर, भीरु, डरपोक और दब्बू मत बनो। वीर, साहसी और पराक्रमशाली बनो। क्रान्तिकारियों के जीवनों का अध्ययन करो। वे मृत्यु को हथेली पर लेकर घूमते थे। फाँसी पर चढ़ने से पूर्व अनेक क्रान्तिकारियों का वज़न बढ़ गया। श्रीरामप्रसाद 'बिस्मिल' को फाँसी पर चढ़ाने से पूर्व उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गई तब उन्होंने निर्भीकता से कहा—I wish the downfall of British Empire. अर्थात् मैं अंग्रेजी राज्य का पतन देखना चाहता हूँ। महाभारत में कहा है **तीक्ष्णो भव मृदुर्भव**—कोमल भी बनो, परन्तु साथ ही प्रचण्ड भी।

६. **अबहुभाषिता**—बहुत अधिक नहीं बोलना। यह गुण भी मनुष्य को चमका देता है। बहुत बोलने से शक्तियों का क्षय होता है, अतः व्यर्थ बोलने से बचें। वेद में कहा है—**मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः**—निद्रा—बहुत अधिक सोना, हर समय ऊँघते रहना और व्यर्थ की गप्पें मारना हमपर शासन न करें। जो व्यक्ति योगाभ्यास के साथ मौन भी रहते हैं, उन्हें सफलता शीघ्र मिलती है। किसी समस्या का समाधान करना है तो थोड़ी देर के लिए मौन होकर चिन्तन कीजिए, बहुत शीघ्र समस्या सुलझ जाएगी।

दानं यथाशक्तिः—अपनी शक्ति के अनुसार दान देना। वेद में कहा है—

शतहस्त समाहर सहस्रहत संकिर। —अथर्व०

हज़ार हाथों से कमाओ और सौ हाथों से दान करो, अर्थात् अपनी आय का दसवाँ भाग दान करो।

आप जितना दान करेंगे उतनी ही आपकी कीर्ति दिग्दिगान्तर में फैलेगी। आप दान दीजिए, प्रभु आपको और देंगे। माँगो मत, दो—

तुलसी कर पर कर करो करतल कर न करो।
जा दिन करतल कर करो तादिन मरण करो॥

एक कवि ने क्या उत्तम कहा है—

ऋतुवसन्त याचक भयो द्रुम दिये सब पात।
ताते नवपल्लव भयो दिया दूर नहीं जात॥
आप भी दानी बनो, निरन्तर फूलो-फलोगे।

८. **कृतज्ञता**—यह आठवाँ गुण है, जो मनुष्य की कीर्ति को चहुँ ओर फैला देता है। जड़पदार्थ—पहाड़ आदि परोपकार कर रहे हैं, नदियाँ अपना जल स्वयं नहीं पीतीं, गाय आदि पशु अपना दूध स्वयं नहीं पीते, वृक्ष अपने फूलों और फलों को स्वयं नहीं खाते। ये सब परोपकार में लगे हैं। मनुष्य तो अपने को सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है, अतः उसे तो सबसे अधिक परोपकारी होना चाहिए। अपना पेट तो कौआ, कुत्ता और गधा-जैसा प्राणी भी भर लेता है। अपना ही पेट पाला तो मनुष्यता क्या हुई? परोपकार करो, परन्तु इतना नहीं कर सकते तो कृतघ्न न बनो, कम-से-कम कृतज्ञ तो बनो—किसी के किये हुए उपकार का बदला तो अवश्य चुकाओ।

यज्ञ करते हुए इन आठ गुणों को अपनी आत्मा में धारण करो, आपकी आत्मा चमक उठेगी। आपके जीवन में ओज, तेज और कान्ति आ जाएगी। आपका जीवन सुजीवन बन जाएगा। आप सच्चे याज्ञिक और अग्निहोत्री बन जाएँगे।

एक मन्त्र से पाँच आहुतियाँ क्यों?

समिदाधान के पश्चात् एक मन्त्र को पाँच बार बोलकर पाँच घृताहुतियाँ देने का विधान है। प्रश्न है कि एक ही मन्त्र से पाँच आहुतियाँ क्यों दी जा रही हैं? कुछ लोगों की यह भी आपत्ति है कि इस मन्त्र में प्रजा की कामना की गई है, अतः ब्रह्मचारियों और

वानप्रस्थों को यह मन्त्र नहीं बोलना चाहिए। गृहस्थियों में भी केवल नवदम्पतियों को जिन्हें सन्तान की इच्छा है, उन्हें ही बोलना चाहिए। जो सन्तान की कामना से निवृत्त हो गये हैं, उन्हीं नहीं बोलना चाहिए।

आइए, इस प्रश्न का विवेचन करें। पाँच आहुतियाँ देने का विधान **'अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्'** मन्त्र से है। इस मन्त्र में याज्ञिक परमात्मा से पाँच बातों के लिए याचना कर रहा है। गृहस्थियों के लिए ये पाँचों बातें अत्यावश्यक हैं, अतः वह इस मन्त्र को पाँच बार पढ़ता हुआ प्रत्येक बार एक-एक वस्तु के लिए विशेष चिन्तन करता है। वे पाँच वस्तुएँ हैं—

१. **प्रजया इध्यस्व**—हमें प्रजा के द्वारा चमकाइए। प्रजा का अर्थ है—**प्रकृष्टेन जायते**—जिसे माता-पिता ने सङ्कल्प लेकर, विशेष तैयारी से उत्पन्न किया है। जो सन्तान खेल-खेल में बिना किसी उद्देश्य के ऐसे ही उत्पन्न हो जाती है, वह प्रजा नहीं है।

चित्रकूट में शरीफ़ा बहुत भारी मात्रा में उत्पन्न होता है, परन्तु बहुत छोटा-छोटा, रस और स्वाद से हीन। सोलन से शिमला तक अनार भी प्रभूत मात्रा में उत्पन्न होता है, वह भी छोटा-छोटा और अत्यन्त खट्टा होता है। दूसरी ओर उद्यान में जो शरीफ़ा अथवा अनार उत्पन्न होता है, वह मोटा-मोटा, देखने में अत्यन्त सुन्दर और रस से भरपूर। चित्रकूट और सोलन से शिमला तक जो शरीफ़ा और अनार उत्पन्न हो रहे हैं, वे जनता के समान हैं। उन वृक्षों को न कोई पानी देता है, न कोई इनकी निलाई और गुडाई करता है। उद्यान में माली रक्खा हुआ है। जब वह पौधों को लगाता है, तब उन्हें जितनी दूरी पर रखना होता है उतनी दूरी पर रखता है। समय-समय पर पानी और खाद देता है, उनकी निलाई और गुडाई करता है, उन्हें काटता और छाँटता है, परिणामस्वरूप देखने में सुन्दर, रसीले और सुस्वादु फल लगते हैं। अपने-आप उगनेवाले और फल देनेवाले पेड़-पौधे जनता के समान हैं और परिश्रमपूर्वक लगाये हुए पौधे प्रजा हैं। याजिक प्रजा की कामना करता है।

२. **पशुभिर्वर्धस्व**—पशुओं से बढ़ाइए। पशु मानवजीवन का अङ्ग हैं। दुग्ध आदि पान के लिए गाय, भेड़ और बकरी आदि चाहिएँ। खेती करने और भार ढोने के लिए बैल तथा सवारी के लिए घोड़ा चाहिए। हमारी वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना में कहा है—**दोग्ध्री धेनुः, आशुः सप्तिः**। [यजुः० २२। २२] हमारे राष्ट्र में प्रभूत दूध देनेवाली

गौएँ और तेज दौड़नेवाले घोड़े हों। एक अन्य मन्त्र में कहा है—

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः॥ —सा० ६५३

हे प्रभो! हमारे जीवनों को पवित्र कीजिए। हमारी गौओं के लिए कल्याण हो, हमारे जनों का मङ्गल हो। हमारे घोड़ों के लिए कल्याण हो और ओषधियों से हमें शान्ति प्राप्त हो।

वेद में गाय और घोड़े को बहुत महत्त्व दिया है। याजिक भक्त अपने और अपने पारिवारिक कल्याण के लिए पशुओं की कामना कर रहा है। घी-दुग्ध आदि का सेवन कर घर के सभी सदस्य हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रहेंगे।

३. **ब्रह्मवर्चसेन इध्यस्व**—हमें ब्रह्मतेज से चमकाइए। ब्रह्म का अर्थ है—परमात्मा, ज्ञान, वेद और वीर्य। यज्ञकर्त्ता की कामना है कि वह ब्रह्मतेज से तेजस्वी बने, उसका मुखमण्डल ब्रह्मतेज से चमकता हुआ हो, उसका मस्तिक ज्ञान की ज्योति से जगमगाता हो। वह वेद का विद्वान् और वीर्य का संयम कर ऊर्ध्वरेता बने। ब्रह्मवर्चस् के महत्त्व और गौरव को समझते हुए महर्षि विश्वामित्र ने ठीक ही कहा था—

धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।
—वा० रा० बाल० ५६। २३

क्षात्रबल को धिक्कार है, वास्तव में ब्रह्मतेज का बल ही बल है। याजिक भी ब्रह्मतेज चाहता है।

४. **अन्नाद्येन वर्धस्व**—खाने योग्य चावल, जौ, उड़द, मूँग, गेहूँ आदि अन्नों से, नाना प्रकार के फलों से, कन्दमूलों से, बादाम, काजू, किशिमश आदि मेवाओं से हमें बढ़ाइए। हमारे घरों में उत्तम अन्नों के ढेर लगे हुए हों, जिन्हें खाकर हम भी तृप्त हों और अतिथियों की भी सेवा कर सकें। हमारी भावना हो—

अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥

अन्न हमारे घर में प्रभूतमात्रा में हो, अतिथि हमारे घर पर आते रहें। माँगनेवालों की हमारे यहाँ भीड़ लगी रहे, हम निरन्तर दें, परन्तु कभी किसी से माँगे नहीं, किसी के समक्ष हाथ न फैलाएँ।

५. **समेधय**—हमें समिधा की भाँति बढ़ाओ और चमकाओ।

जैसे समिधा यज्ञकुण्ड में पहुँचकर चमक उठती है, उसमें दाहक शक्ति आ जाती है, प्रभो! ऐसे ही हमारे जीवनों को चमका दीजिए। हमारे जीवनों में प्रकाश हो, ओज और तेज हो।

इस मन्त्र को ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ सभी बोल सकते हैं। प्रजा का अर्थ औरस पुत्र ही नहीं है, वानप्रस्थ और संन्यासी जो शिष्य बनाएँगे, वे ही उनकी सन्तानें होंगी। हमारी इन्द्रियाँ भी हमारी प्रजाएँ हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश में मनुजी महाराज को उद्धृत करते हुए लिखते हैं—

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतके, अर्थात् अपने वश में रखके सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हटे-हटाये रहें, इसलिए रात-दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें, क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों=जो मन, प्राण और शरीररूप प्रजा है, इसको जीतें, उसके बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करते को कोई समर्थ कभी नहीं हो सकता। —सत्यार्थप्रकाश, षष्ठसमुल्लास

इस प्रमाण से यह सिद्ध है, इस मन्त्र को बोलने में किसी के लिए कोई बाधा नहीं है।

एक बात और मन्त्र में **अस्मान्** पद है। जिनको इच्छा हो उन्हें प्रजा से चमकाइए और बढ़ाइए, जिन्हें आवश्यकता नहीं है, वे मुक्त हैं ही।

चम्मच कैसे पकड़ें ?

महर्षि लिखते हैं—"मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ से स्रुवा को पकड़।" स्रुवा को कलम=लेखनी की भाँति नहीं पकड़ा जाता। शंका यह है कि स्रुवा को महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट प्रकार से ही क्यों पकड़ें? शङ्का का समाधान प्रस्तुत है—

कर्मकाण्ड में सर्वत्र अंगुष्ठ मध्यमा तथा अनामिका का ही प्रयोग किया जाता है। अङ्गस्पर्श करते हुए मध्यमा और अनामिका अंगुलियों का ही प्रयोग होता है। किसी को तिलक लगाना हो तो अनामिका और अंगुष्ठ का प्रयोग किया जाता है। माला से जप करते हुए [हमारे विचार में माला से जप नहीं करना चाहिए। परमात्मा के साथ हिसाब-किताब मत करो। कबीर वे शब्दों में—**करका मनका छाँडके मन**

का मनका फेर।] भी मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ का ही प्रयोग होता है, सामग्री भी इन्हीं मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ से डाली जाती है। **कविः करोति काव्यानि रसं जानाति पण्डितः।** कवि कविता लिखता है और पण्डित—सुधीजन उसका आनन्द लूटते हैं। एक व्याख्या यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, समाधान और भी हो सकते हैं।

हम क्या कर रहे हैं? यज्ञ! यह कैसा कर्म है? **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**—यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है, सबसे उत्तम कर्म है, ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कर्म है तब बीचवाली सबसे बड़ी अंगुली को लगाइए। क्या आप यह यज्ञ किसी के भय से, किसी के डराने-धमकाने से कर रहे हैं? नहीं, हम तो अपनी इच्छा, श्रद्धा-भक्ति और प्रेम से कर रहे हैं। अच्छा, जब आपका तर्जन कोई नहीं कर रहा, आपको डरा-धमका कोई नहीं रहा तब अपनी तर्जनी अंगुली को हटा दीजिए। क्या आप छोटा कर्म कर रहे हैं? नहीं, हम तो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कर्म कर रहे हैं, तब अपनी छोटी अंगुली को भी हटा दीजिए। क्या आप यह यज्ञ अपने नाम के लिए—यश के लिए कर रहे हैं। नहीं, यह तो हमारा दैनिक कर्त्तव्य है, तब अनामिका अंगुली को मध्यमा के साथ जोड़ दीजिए, अर्थात् इस यज्ञ से हमें नाम की भी आवश्यकता नहीं है। अंगूठे के बिना पकड़ नहीं हो सकती, इसलिए दोनों अंगुलियों के साथ अंगूठे को मिलाइए। अंगूठे का अर्थ है **अंगुलियामंगुलियां तिष्ठतीत्यंगुष्ठः**—अंगुष्ठ का सब अंगुलियों के साथ सम्बन्ध है, इसलिए महर्षि ने लिखा है कि 'मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ से स्रुवा को पकड़।'

जल-सेचन कैसे करें?

जीवन में चलने के चार मार्ग हो सकते हैं—१. अन्धकार से प्रकाश की ओर चलना। वेद का सन्देश है—**आ रोह तमसो ज्योतिः,** हे मनुष्य! तू अन्धकार से निकलकर ज्योति की ओर चल। उपनिषदों में प्रार्थना हे—**तमसो मा ज्योतिर्गमय**—हे प्रभो! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले-चलो। २. दूसरा मार्ग है प्रकाश-से-प्रकाश में चलना। ३. तीसरा मार्ग है प्रकाश से अन्धकार में चलना और ४. चौथा मार्ग है अन्धकार से अन्धकर में चलना। इन चार मार्गों में से आरम्भ के दो ठीक हैं और अन्त के दो ग़लत हैं। यज्ञ में जल-सेचन की प्रक्रिया करते हुए यही बताया गया है कि हम अन्धकार से प्रकाश की ओर और प्रकाश-से-प्रकाश में चलें। पूर्व प्रकाश की दिशा है उधर सूर्य उदय होता है। उत्तर भी प्रकाश की दिशा है। सप्तऋषि-मण्डल

और ध्रुव तारा इसी दिशा में होता है। दक्षिण और पश्चिम अन्धकार की दिशाएँ हैं।

पूर्व में जल सेचन करते हुए दक्षिण से उत्तर की ओर जल छिड़का जाता है। दीपक को ईशानकोण में रक्खा जाता है, क्योंकि इस कोण में पूर्व और उत्तर दोनों प्रकाश के कोण मिलते हैं। जल-सेचन करते हुए हम दीपक की ओर—अन्धकार से प्रकाश की ओर चलते हैं। पश्चिम में जल डालते हुए भी हम दक्षिण से उत्तर की ओर चलते हैं। उत्तर में जल डालते हुए पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं। तीन बार जल-सेचन करते हुए हमने एक ही बात को दोहराया कि हम अन्धकार से प्रकाश की ओर चलें। चौथी बार जल डालते हुए हम पूर्व में मध्य से जल डालते हुए यज्ञ की परिक्रमा करते हुए अन्त में जहाँ से क्रिया आरम्भ की थी, वहीं पहुँचते हैं, अर्थात् प्रकाश से प्रकाश में आते हैं।

अन्धकार से प्रकाश में चलना क्या है ? अपने दुर्गुण, दुर्व्यसन—बीड़ी-सिगरेट, मद्य-मांस, अण्डे आदि का सेवन, जुआ खेलना, चौपड़, ताश, शतरंज आदि को छोड़कर श्रेष्ठ गुण-कर्म और स्वभाव को जीवन में धारण करना। प्रकाश से प्रकाश में चलने का अर्थ है—जीवन, शुद्ध, पवित्र था, दान देता है, अतिथि-सत्कार करता है, आज एक व्रत लेकर स्वाध्याय भी आरम्भ कर देता है। यह प्रकाश से प्रकाश में चलना है।

प्रकाश से अन्धकर में चलने का अर्थ है—व्यक्ति के जीवन में व्यसन नहीं थे। एक सामान्य अच्छा जीवन जी रहा था, परन्तु मित्रों की सङ्गत में बैठकर शराब पीना आरम्भ कर दिया, अण्डे और मांस खाने लगा। यह प्रकाश से अन्धकार में जाना है। अन्धकार से और अधिक अन्धकार में जाने का तात्पर्य है, जीवन में पहले ही अनेक दुर्व्यसन थे, मित्रों की सङ्गति में बैठकर कुछ और दुर्व्यसन पाल लिये। यह अन्धकार से घोर अन्धकार में जाना है।

जल-सेचन की यह प्रक्रिया याज्ञिकों को सन्देश देती है कि वे अन्धकार से प्रकाश की ओर चलें। प्रकाश से प्रकाश की ओर चलें प्रकाश से अन्धकार की ओर न चलें और अन्धकार से गहन अन्धकार में न गिरें।

एक आहुति उत्तर में दूसरी दक्षिण में क्यों ?

आघारावाज्यभागाहुतियों में **अग्नये स्वाहा** से पहली आहुति उत्तर में दी जाती है और '**सोमाय स्वाहा**' से दूसरी आहुति दक्षिण में

दी जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि अग्नि का स्थान उत्तर में और सोम का स्थान दक्षिण में निश्चित है। पुरुष अग्निप्रधान और स्त्री सोमप्रधान है, इसीलिए पत्नी को पति के दक्षिण में बैठाया जाता है। अगली दो आहुतियाँ कुण्ड के मध्य में दी जाती हैं, क्योंकि इन्द्र=विद्युत् और प्रजापति=सूर्य—इनका कोई स्थान निश्चित नहीं है, अत: ये दो आहुतियाँ कुण्ड के मध्य में दी जाती हैं।

यज्ञ में जितनी प्रक्रियाएँ की जाती हैं, वे प्रतीकात्मक हैं। इन सभी प्रक्रियाओं का जीवन के साथ सम्बन्ध है। लीजिए, इस प्रक्रिया की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत है—मानचित्र [रवुश्च, नक़्शे] की भाँति मनुष्य का शिर उत्तर में है और पाँव दक्षिण में। मस्तिष्क अग्नि=ज्ञान का केन्द्र है और दक्षिण में—नीचे की ओर वीर्य की स्थिति है। शिर को उत्तर—उत्कृष्ट बनाना है, इसे ज्ञान-दीप्ति से प्रदीप्त करना है। यह प्रदीप्त कैसे होगा? वीर्य को ऊपर चढ़ाओ—ऊर्ध्वरेता बनो। इसका फल क्या होगा? यदि गृहस्थ जीवन व्यतीत किया तो प्रजा—सुप्रजा, उत्तम सन्तान की प्राप्ति होगी, जो अपना नाम उज्ज्वल करेगी और अपने परिवार का भी गौरव बढ़ाएगी। यदि आजीवन ब्रह्मचारी रहे तो इन्द्र=ऐश्वर्यशाली बन जाओगे। वीर्य के संरक्षण से शरीर का स्वास्थ्य, मुखमण्डल की कान्ति, ओज और तेज की प्राप्ति होगी। मन में विमलता आएगी। मन की चञ्चलता दूर होगी, बुद्धि तीव्र होकर कठिन और गम्भीर विषय को भी शीघ्रता से समझ लेगी।

मौन आहुति क्यों?

मौन आहुतियाँ दो हैं। एक आहुति प्राजापत्य आहुति है। **'ओं प्रजापतये स्वाहा'** जब यह आहुति अखिल ब्रहाण्डपति, सारी प्रजाओं के पालक परमात्मा के लिए दी जाती है, तब यह आहुति मन में बोलकर दी जाती है। इस विषय में शतपथब्राह्मण में एक आख्यायिका आती है।

कहते हैं एक बार मन और वाणी में झगड़ा हो गया। मन कहता था मैं बड़ा हूँ और वाणी कहती थी मैं बड़ी हूँ। जब दोनों कोई निर्णय नहीं कर सके तब वे अपना निर्णय कराने के लिए प्रजापति के पास पहुँचे। दोनों ने प्रजापति के समक्ष अपनी समस्या रक्खी। प्रजापति बोले तुम अपनी-अपनी युक्तियाँ दो तुम क्यों बड़े हो? तुम्हारी युक्तियों को सुनकर मैं अपना निर्णय दूँगा। मन बोला—'मैं सोचता हूँ तो वाणी बोलती है, मैं सोचूँ नहीं तो वाणी बोल ही नहीं सकती। मैं

जो बात एक क्षण में सोच लेता हूँ वाणी को उसे कहने के लिए घण्टों चाहिएँ, इसलिए मैं बड़ा हूँ'। वाणी बोली—'यह सोचता रहे, घण्टों सोचता रहे यदि मैं न बोलूँ तो यह अपनी बात प्रकट ही नहीं कर सकता।' दोनों के तर्क सुनकर प्रजापति ने निर्णय दिया—'बड़ा तो मन ही है।' यह सुनकर वाणी को बड़ा क्रोध आया। वह बोली—'अच्छा! जब तुम्हारे नाम की आहुति आएगी तब मैं मौन हो जाऊँगी।'

इस आख्यायिका का तात्पर्य क्या है? परमात्मा के गुण अनन्त हैं—**न तत्र वाग्गच्छाति**—वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती, अतः वाणी मौन हो जाती है, मन की पहुँच वाणी से बहुत आगे है, अतः यह आहुति मौन होकर दी जाती है।

दूसरी मौन आहुति सायंकाल के मन्त्रों में तीसरे मन्त्र से दी जाती है। प्रातः और सायं के आठ मन्त्र यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के नवें और दसवें मन्त्र से बनाये गये हैं।

इन दो मन्त्रों से सात मन्त्र बनते हैं। प्रातःकाल के चार और सायंकाल के तीन मन्त्र बनते हैं। दोनों समय के मन्त्रों में समानता रखने के लिए सायंकाल के मन्त्रों में तीसरी आहुति के लिए पहले मन्त्र का ही अध्याहार कर लिया है। यह मन्त्र प्रातःकाल के मन्त्रों की भाँति सायंकाल के मन्त्रों में नहीं है, इसीलिए इसे मौन बोला जाता है।

क्या स्विष्टिकृत्-मन्त्र मध्य में है?

कर्मकाण्ड से अनभिज्ञ अनेक विद्वान् '**यदस्य कर्मणो**' मन्त्र को '**संस्कारविधि**' में जहाँ यह मन्त्र लिखा हुआ है, वहाँ न बोलकर '**भवतन्नः समनसौ**' मन्त्र के पश्चात् बोलते हैं, ऐसा करना ठीक नहीं है। जहाँ और जिस क्रम में महर्षि ने यह मन्त्र लिखा है, वह मध्य में नहीं, अन्त में ही है। यज्ञकर्त्ता कहेंगे कि इसके पश्चात् तो बारह मन्त्र और हैं, पुनः यह मन्त्र अन्त में कैसे है? इसका समाधन इस प्रकार है—

आर्यसमाज का अथवा किसी संस्था का उत्सव हो रहा है। अन्तिम व्याख्यान हो गया और उत्सव समाप्त। नहीं, ऐसा नहीं है। व्याख्यान के पश्चात् मन्त्रीजी, प्रधानजी अथवा कोई संयोजक उठेगा और वह परमात्मा का, विद्वानों का, दानदाताओं का, टैण्ट- शामियानेवालों का और श्रोताओं का धन्यवाद करेगा। तत्पश्चात् शान्तिपाठ होकर उत्सव समाप्त होगा। ठीक वही प्रक्रिया यज्ञ में समझ लें। यज्ञ की समाप्ति तो '**यदस्य कर्मणो**' मन्त्र पर हो गई। 'प्रजापते स्वाहा' से यह

भी कह दिया कि यज्ञ के सम्बन्ध में तो हम सब-कुछ जानते हैं, परन्तु परमेश्वर के सम्बन्ध में हम सब-कुछ नहीं जानते। यहाँ हमारी वाणी मौन है।

इसके आगे चार मन्त्रों में 'यज्ञाग्नि की वन्दना' है। इन मन्त्रों में यज्ञ के लाभों का वर्णन है। **'त्वं नो अग्ने'** इत्यादि आठ मन्त्रों में 'विद्वद् वन्दना' है। विद्वानों का मान-सम्मान होगा तो कर्मकाण्ड—नाना प्रकार के यज्ञों की विधियाँ जीवित रहेंगी, अन्यथा सारे कर्मकाण्ड का लोप हो जाएगा।

अन्त में महावामदेव्यगान है। यह ईश-वन्दना है।

अतः यह मन्त्र जहाँ है, वहीं उसी क्रम में बोलना चाहिए।

स्विष्टिकृत्-मन्त्र से किस वस्तु की आहुति दें?

ऋषि ने लिखा है—''स्विष्टिकृत् होम आहुति एक ही है, यह घृत अथवा भात की देनी चाहिए।'' ऋषि के लेख के अनुसार यहाँ भात अथवा घृत की ही आहुति दी जाएगी। फुलियाँ, गुड़, चीनी, हलवा, लड्डू, बर्फी आदि की आहुति नहीं देनी चाहिए। क्यों नहीं देनी चाहिए—

महर्षि ने अपने ग्रन्थ केवल भारतवालों के लिए नहीं लिखे, अपितु सारे संसारवालों के लिए लिखे हैं। अनेक देश ऐसे हैं जहाँ जौ, गेहूँ, चना, मूँग आदि पैदा ही नहीं होते। धान—चावल सर्वत्र पैदा होता है, अतः महर्षि दयानन्दजी ने भात की आहुति देना लिखा है। संस्कारों में एक स्थान पर खिचड़ी की आहुति देना लिखा है, वहाँ वैसा कर सकते हैं।

क्या यज्ञ के अन्त में 'वसोः पवित्रमसि' मन्त्र बोलना चाहिए?

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि, सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस मन्त्र का संकेत कहीं नहीं दिया है और अगली बात किसी गृह्यसूत्र और श्रौत्रसूत्र में भी इसका विधान नहीं है। यज्ञान्त में इस मन्त्र को बोलना यज्ञ पर बैठकर झूठ बोलना है। धारा तो एक डाल रहा है और कह यह रहा है कि मैं सौ और हज़ार धाराएँ डाल रहा हूँ। कुछ लोगों ने चलनी बाँधकर घी डालना आरम्भ कर दिया, परन्तु धारा तो वहाँ भी एक ही गिरती है। यह परिपाटी अवैदिक है, हमारे आचार्य के मन्तव्य के

विरुद्ध है, अतः यह परिपाटी बन्द होनी चाहिए।

क्या पूर्णमदः मन्त्र बोलना चाहिए

अनेक विद्वान् और पुरोहित 'भवतन्न' मन्त्र के पश्चात् 'पूर्णमिदः पूर्णमिदम्' इत्यादि मन्त्र बोलते हैं। महर्षि दयानन्दजी ने इस मन्त्र का भी सङ्केत अपने किसी ग्रन्थ में नहीं दिया है। यदि इसकी आवश्यकता होती तो आचार्य अवश्य निर्देश करते।

महर्षि ने संस्कारविधि की रचना 'अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधयज्ञ' पर्यन्त यज्ञों के लिए की है। यह बात यज्ञ के जो पात्र संस्कारविधि में लिखे हैं, उनसे सिद्ध है। यज्ञ के आदि और अन्त का स्वरूप तो सर्वत्र वैसा ही रहेगा, जैसा संस्कारविधि में लिखा है। मध्य में कुछ विशेष किया जा सकता है, जैसाकि विधान ऋषि ने किया है—

"प्रधानहोम अर्थात् जिस-जिस कर्म में जितना-जितना होम करना हो, करके"

इस बात को एक दृष्टान्त से समझिए। भारतवर्ष का नक़्शा= मानचित्र पाँच सैण्टीमीटर में भी बन सकता है, पचास और सौ सैण्टीमीटर में भी और इनसे बहुत बड़ा भी, परन्तु सर्वत्र उसकी शकल एक-जैसी ही होगी। यदि किसी मानचित्र में कुछ रूस का भाग, कुछ चीन का भाग भी दिखा दिया जाए तो वे देश विरोध-पत्र भेजेंगे। भारतवर्ष के चित्र के मध्य में परिवर्तन हो सकते हैं। जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब पन्द्रह प्रान्त थे। आज उनकी संख्या २७-२८ पहुँच गई है।

ठीक इसी प्रकार कोई विशेष कर्म करना है, विशेष मन्त्र बोलने हैं, वे मध्य में बोले जा सकते हैं। "**भवतन्नः समनसौ**" और '**सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा**' इनके मध्य में "पूर्णमिदः" आदि कोई मन्त्र नहीं बोलना चाहिए।

□□

नामकरण संस्कार के लिए तिथि, नक्षत्र एवं उनके देवताओं का विवरण

तिथिदेवताः—१. ब्रह्मन्। २. त्वष्टृ। ३. विष्णु। ४. यम। ५. सोम। ६. कुमार। ७. मुनि। ८. वसु। ९. शिव। १०. धर्म। ११. रुद्र। १२. वायु। १३. काम। १४. अनन्त। १५. विश्वेदेव। ३०. पितर।

नक्षत्रदेवताः—अश्विनी—अश्वी। भरणी—यम। कृत्तिका—अग्नि। रोहिणी—प्रजापति। मृगशीर्ष—सोम। आर्द्रा—रुद्र। पुनर्वसु—अदिति। पुष्य—बृहस्पति। आश्लेषा—सर्प। मघा—पितृ। पूर्वा-फाल्गुनी—भग। उत्तराफाल्गुनी—अर्यमन्। हस्त—सवितृ। चित्रा—त्वष्टृ। स्वाति—वायु। विशाखा—इन्द्राग्नी। अनुराधा—मित्र। ज्येष्ठा—इन्द्र। मूल—निर्ऋति। पूर्वाषाढा—अप्। उत्तराषाढा—विश्वेदेव। श्रवण—विष्णु। धनिष्ठा—वसु। शतभिषज्—वरुण। पूर्वाभाद्रपदा— अजपाद्। उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य। रेवती—पूषन्॥

ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म—ये स्पर्श और य, र, ल, व—ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम में होने चाहिएँ और स्वरों में से कोई भी स्वर हो। जैसे—भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः इत्यादि। पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिए तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खें। अन्त्य में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त भी होवे—जैसे—श्रीः ह्रीः, यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रोडा इत्यादि, परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खें, उसमें प्रमाण—

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ —मनुस्मृतौ।

(ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि, (वृक्ष) चम्पा, तुलसी इत्यादि, (नदी) गङ्गा, यमुना, सरस्वती इत्यादि, (अन्त्य) चाण्डाली इत्यादि, (पर्वत) विन्ध्याचला, हिमालया इत्यादि, (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि, (अहि) सर्पिणी, नागी इत्यादि, (प्रेष्य) दासी, किङ्करी इत्यादि, (भयंकर) भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं।

भजन—सच्चे शिव का मतवाला

बीहड़ वन में विचर रहा था सच्चे शिव का मतवारा।
छोड़ दिया था घर वारा॥

सुनी जमाने ने न उसकी क्या थी दर्द कहानी।
जान-बूझकर उन लोगों ने एक बात न उसकी मानी॥
कांच पीस कर दूध में गेरा ऊपर जहर पिला डारा।
छोड़ दिया..........

फूट-फूट कर हर एक नस से शीशा ऊपर आया।
फिर भी खिला हुआ था चेहरा जरा नहीं मुरझाया॥
ईश्वर इच्छा पूर्ण हो तू ही मेरा पीतम प्यारा।
छोड़ दिया..........

कहा ऋषि से भक्तों ने कोई पीछे याद बनाये।
सुनकर भक्तों की बातों को ऋषिवर झट मुस्कराये॥
वही चलाना चाहते पूजा जिससे चाहता छुटकारा।
छोड़ दिया..........

वैदिक रीति से दाह करना देह मेरी जल जाये।
राख मेरी भी मैं चाहता हूँ काम किसी के आये॥
राख उठा खेतों में डालो प्रेमी जाने जग सारा।
छोड़ दिया..........

परहित में जीवन दे डाला सांची बात यही है।
दुनिया के विद्वानों ने भी यही बात कही है॥
मानव पर उपकार घनेरे सब की आँखों का तारा।
छोड़ दिया..........

वैदिक-श्रीसूक्तम्

ओ३म्। वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ १॥ —यजुः० १८।१

अर्थ—मेरा अन्न, बल तथा शक्ति और उनके प्रयोग करने का विज्ञान; मेरा ऐश्वर्य और उसकी प्राप्ति के साधन; मेरा पुरुषार्थ और उसके साधन; मेरा प्रबन्ध और रक्षा; मेरी धारणा और ध्यान; मेरी प्रज्ञा और उत्साह; मेरी स्वतन्त्रता और कठोर तप; मेरी सुशिक्षित वाणी और वक्तृता; मेरा सुनना और सुनाना; मेरी विद्या और उसके अनुकूल स्मृति; मेरा विद्याप्रकाश और दूसरों के लिए विद्याप्रदान; मेरा सुख और परमसुख—ये सब परमपूज्य परमेश्वर की अनुकम्पा और यज्ञ के द्वारा समर्थ हों। ये सभी वस्तुएँ और गुण मुझे प्राप्त हों और मेरे जीवन को सुजीवन बनाएँ॥ १॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २॥ —यजुः० १८।२

अर्थ—मेरी प्राणशक्ति=हृदय और कण्ठदेश में स्थित वायु, मेरा अपान=नाभि से नीचे और नाभि में स्थित वायु (समानवायु), मेरा व्यान=शरीर की सब सन्धियों में व्याप्त वायु और धनञ्जय वायु, मेरा असु=नागवायु और कूर्म आदि अन्य सब वायु, मेरा चित्त=मेरी स्मृति और बुद्धि, मेरी निश्चयवृत्ति और उसका पालन, मेरी वाणी और उसका श्रवण—सुनना, मेरी सङ्कल्प-विकल्पात्मक-वृत्ति और अहङ्कार, मेरे नेत्र और प्रत्यक्ष प्रमाण, मेरे कान और आगम= शास्त्र-प्रमाण, मेरी चतुरता और प्रतिभा, मेरा बल और पराक्रम—ये सब धर्माचरण द्वारा सामर्थ्ययुक्त हों—ये सभी सबल, तेज और ओज से युक्त हों॥ २॥

ओजश्च मे सहश्च मऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूꣳषि च मे शरीराणि च मऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ ३॥ —यजुः० १८।३

अर्थ—मेरा ओज=शरीर में स्थित बल और तेज, मेरा सह=शारीरिक और मानस बल, मेरा आत्मा=अपना स्वरूप और सामर्थ्य, मेरा शरीर और शरीर के सब अवयव, मेरा घर और घर के सब पदार्थ, मेरा रक्षक कवच और अन्य शस्त्र-अस्त्र, मेरे सभी अङ्ग और उपाङ्ग, मेरी हड्डियाँ

और अन्य आन्तरिक अङ्ग, मेरे मर्मस्थल और जीवन के हेतु अन्य स्थल, मेरे सम्बन्धियों के शरीर और उनके शरीरों के सूक्ष्म अवयव, मेरा जीवन और जीवन के साधन, मेरी वृद्ध और जरावस्था—ये सब परमात्मा की कृपा और अनुग्रह से सामर्थ्य से युक्त हों, अर्थात् शरीर के सभी अङ्ग-उपाङ्ग हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ और जीवन के सभी साधनों से युक्त हों॥ ३॥

ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ ४॥

—यजुः० १८।४

अर्थ—मेरा बड़प्पन और श्रेष्ठ वस्तुएँ, मेरा स्वामित्व और सम्पत्ति, मेरा मन्युः=अभिमान और शान्ति, मेरा भामः=क्रोध और सहनशीलता, मेरा अमः=न्याय से प्राप्त गृहादि और प्राप्त करनेयोग्य अन्य पदार्थ, मेरे अम्भः=जल और दुग्धादि अन्य पदार्थ, मेरी जयशीलता और विजय, मेरी महिमा और प्रतिष्ठा, मेरी श्रेष्ठता और उत्तम आचार, मेरी विशालता और सुसन्तान, मेरा दीर्घ जीवन और मोक्ष, मेरी अविच्छिन्न वंशपरम्परा और सुप्रजा, मेरा प्रभूत धन और नाना प्रकार के अन्न, मेरी वृद्धि=विद्यादि गुणों और सत्क्रिया के द्वारा उत्तम स्थिति और उनसे उत्पन्न सुख—ये सब परमेश्वर के कृपाकटाक्ष और धर्म के अनुष्ठान से सामर्थ्ययुक्त हों॥ ४॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳस्वाहा॥ ५॥ —यजुः० ३२।१३

अर्थ—मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी, अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाववाले=आश्चर्यरूप, प्राणिमात्र का हित करनेवाले, कामना करने=चाहने योग्य परमेश्वर की स्तुति और उपासना करके उससे भोग-योग्य सामग्री—नाना प्रकार के अन्न, धन और मेधा= धारणावती बुद्धि की याचना करता हूँ। स्वाहा=यह बुद्धि की प्रार्थना अत्युत्तम हुई है। इससे बढ़कर और क्या प्रार्थना हो सकती है॥ ५॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ ६॥

—यजुः० ३२।१४

अर्थ—जिस धारणवती बुद्धि को देव=विद्वान् लोग चाहते हैं और

पितर=विशेष ज्ञानीजन जिस मेधा-बुद्धि की कामना करते हैं, हे सर्वोन्नति साधक प्रकाशस्वरूप प्रभो! मुझे आज ही—इसी जीवन में उस मेधा-बुद्धि से मेधा-सम्पन्न कर दीजिए। यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है। इसके लिए मैं अपने स्वार्थ का त्याग करता हूँ॥ ६॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥ ७॥ —यजुः० ३२।१५

अर्थ—सर्वश्रेष्ठ तथा वरणीय परमेश्वर मुझे मेधा=धारणवती बुद्धि और धन प्रदान करे। अग्नि= प्रकाशस्वरूप और सबको आगे ले-चलनेवाला तथा सब प्रजाओं का रक्षक परमेस्वर मुझे मेधा बुद्धि और धन प्रदान करे। परमैश्वर्यशाली, अत्यन्त बलशाली, और सर्वप्रेरक तथा सबका धारक परमेश्वर मुझे मेधा=ऐश्वर्य, मेधावती बुद्धि और सबको धारण करनेवाला धन प्रदान करे। इस मेधा और धन की प्राप्ति के लिए मैं आत्म-समर्पण करता हूँ॥ ७॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥ ८॥ —यजुः० ३२।१६

अर्थ—मेरा ब्रह्मबल और क्षात्रबल दोनों श्री को प्राप्त हों, अर्थात् मेरा ज्ञान और बल दोनों ही फूलें-फलें—मेरा ज्ञान भी बढ़े और क्रियाशक्ति भी बढ़े। देवगण मुझमें अतिश्रेष्ठ श्री=लक्ष्मी—धन-सम्पत्ति को धारण करें और दिव्य गुण उत्तम श्री=शोभा, सौन्दर्य का धारण करें। मेरे हृदय में दिव्यता हो, मेरा हृदय अभिमान से रहित हो और उसमें विनम्रता हो। इस प्रकार मस्तिष्क में ज्ञान, हाथों में कर्मशक्ति और हृदय में विनय—यही जीवन का चर्मोत्कर्ष है। इस उत्तम श्री के लिए हे प्रभो! मैं आपके प्रति अपना समर्पण करता हूँ॥ ८॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा॥ ९॥ —यजुः० ३९।४

अर्थ—हे प्रभो! आपकी कृपा से मैं मन की शुभ कामना तथा शिवसङ्कल्प को, वाणी के सत्य को, पशुओं के स्वाभाविक गुणों को—उनके रूप-सौन्दर्य को और अन्न के रस को प्राप्त करूँ—जीवन में इनका सेवन करूँ। यश, धन-धान्य और ऐश्वर्य मुझमें आश्रित होकर रहें—यह मेरी हार्दिक कामना है॥ ९॥

कया नश्चित्रऽआभुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता॥ १०॥ —यजुः० ३६।४

अर्थ—हे परमेश्वर! अद्भुत, आश्चर्यजनक गुण-कर्म-स्वभाववाला और जीवात्मा को सदा उन्नति की ओर ले-चलनेवाला तू किस प्रसादन=प्रसन्न करने की विधि से, किस कर्म=व्यवहार से और किस आचरण से हमारा मित्र और सहायक बन सकता है—मित्र के समान हमारा कल्याण कर सकता है, जिससे हम जीवन के चारों फल—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। परमात्मा किन कर्मों और आचरणों से प्राप्त होता है, भक्तों को सदा यह चिन्तन करना चाहिए॥ १०॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽ उक्तिं विधेम॥ ११॥

—यजुः० ५। ३६

अर्थ—हे सबको आगे ले-चलनेवाले प्रकाश-स्वरूप परमात्मन्! विविध ऐश्वर्यों—धन-धान्य की प्राप्ति के लिए आप हमें सुपथ से ले-चलिए। सब ऐश्वर्यों और सुखों के प्रदाता प्रभो! आप हमारे सारे कर्मों और प्रज्ञानों को जानते हैं, अतः पाप और कुटिलता को हमसे दूर कीजिए। आपकी कृपा और उपकारों के लिए हम बारम्बार आपको प्रणाम करते हैं॥ ११॥

दिवो वा विष्णऽ उत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽ उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा॥ १२॥

—यजुः० ५। १९

अर्थ—हे सर्वव्यापक प्रभो! चाहे द्युलोक से या पृथिवीलोक से अथवा अत्यन्त विशाल अन्तरिक्षलोक से आप हमारे दोनों हाथों को धन से अवश्य भर दीजिए। दक्षिण और वाम पार्श्व से—सभी ओर से हमें धन-ऐश्वर्यों से भरपूर कर दीजिए। सर्वत्र व्याप्त तुझ परमेश्वर को पाने के लिए हम तुझे नमस्कार करते हैं और तुझे प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हैं॥ १२॥

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि॥ १३॥

—ऋ० ४। ३२। २०

अर्थ—हे बहुदानी! बहुत अधिक देनेवाले प्रभो! तू हमें खूब दे—बहुत अधिक धन प्रदान कर, थोड़ा-थोड़ा मत दे, खूब भरपूर कर दे। हे ऐश्वर्यशालिन्! तू निश्चय ही बहुत अधिक देनेवाला है॥ १३॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥ १४॥

—ऋ० २।२१।६

अर्थ—हे परमैश्वर्यशालिन्! आप हमें श्रेष्ठ धन प्रदान कीजिए। कौन-से श्रेष्ठ धन? हमें उत्साह का ज्ञान दीजिए। हमारे हृदय में उत्साह की तरंगे उठती रहें, हमारा भाग्य अच्छा हो, धन हमारे पास खूब हो, हमारे शरीर नीरोग हों, हमारी वाणी में माधुर्य हो और हमारे दिन सुदिन बनें (हमारा प्रत्येक दिन ईश्वर-चिन्तन, वेदाध्ययन और शुभकर्मों में व्यतीत हो, हम व्यसनों, अलस्य और कलह आदि से बचें)॥ १४॥

भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १५॥

—ऋ० १०।१२१।१०

अर्थ—हे सच्चिदानन्दस्वरूप! प्रजा के स्वामी परमेश्वर! संसार में उत्पन्न हुए जितने भी जड़ और चेतन पदार्थ हैं आप उनमें सर्वोपरि=सर्वश्रेष्ठ और सर्वमहान् हैं, अतः जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और कामना करें, हमारी वह-वह कामना सिद्ध हो—पूर्ण हो। हमारी कामना है कि हम धनैश्वर्यों के स्वामी होवें॥ १५॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण॥ १६॥

—यजुः० ३१।२२

अर्थ—हे जगदीश्वर! संसार में दृष्टिगोचर होनेवाली सब श्री और लक्ष्मी—शोभा और सारा ऐश्वर्य आपकी पत्नी=सहचरी के तुल्य है। दिन और रात्रि आपकी दो भुजाओं के तुल्य हैं, अर्थात् आप कालस्वरूप हैं। आकाश में गतिशील नक्षत्र आपका प्रकाशस्वरूप हैं। पृथिवी और द्युलोक आपके खुले हुए मुख के समान हैं। ऐसे आपमें मैं निवास करता हूँ। आप मेरे अन्दर-बाहर चारों ओर व्यापक हैं, अतः आप मेरे लिए परोक्ष सुख को चाहते हुए उसे मुझे प्राप्त कराइए। मुझे सब लोकों का ज्ञान प्राप्त कराइए और मुझे सब सुखों को प्राप्त कराइए॥ १६॥

भजन

यदि भला किसी का कर न सको, तो बुरा कि किसी का मत करना।
अमृत न पिलाने को घर में, तो जहर पिलाने से भी डरना॥
यदि सत्य मधुर बोल न बोल सको तो, झूठ कठिन भी मत बोलो।
यदि मौन रखो सबसे अच्छा, कम से कम विष तो न घोलो॥ १॥
बोलो तो पहले तुम तो लो, फिर मुख ताला खोला करना।
यदि घर न किसी का बसा सको तो, झोंपड़ी न जला देना॥
यदि मरहम पट्टी कर न सको, तो खाद नमक न लगा देना।
यदि दीपक बनकर जल न सको, तो अन्धकार भी मत करना॥ २॥
यदि फूल नहीं बन सकते हो, तो काँटे बन न बिखर जाना।
मानव बनकर सहला न सको, तो दिल न किसी का दुःख लाना॥
यदि देव नहीं बन सकते हो, तो दानव बनकर मत फिरना।
यदि बनना है भगवान् नहीं, तो कम से कम इन्सान बनना॥ ३॥
तुम कभी नहीं शैतान बनो, और कभी न तुम हैवान बनो।
यदि सदाचार अपना न सको तो, पापों से निशदिन डरना॥ ४॥

भजन

ऋषि ने टंकारा में जन्म लिया है।
डूबती दुनिया को प्रेमी पार किया है॥
शिव की जो रात आई मूल जी ने ज्ञान लिया।
अनादि जो शिव हैं उनको पहचान लिया॥
एक सच्चे शिव का प्रचार किया है॥ १॥
धर्म के जो ठेकेदार पाप कमाते थे।
विधवा अनाथों दुःखी जनों को सताते थे॥
उनको बचा के उपकार किया है॥ २॥
मौलवी व पादरी हमको मिटाते थे।
आर्य हिन्दु जाति मठ-मन्दिर गिराते थे॥
ऐसे पापी जनों का संहार किया है॥ ३॥
गिरितों को उठाने वाले रोतों को हँसाने वाले।
भूले पथिकों को प्रेमी मार्ग बतलाने वाले॥
सनातन वैदिक धर्म का प्रचार किया है॥ ४॥

हमारे सहयोगी

श्री सरस्वतीप्रसादजी गोयल-श्रीमती कंचनलतादेवीजी

श्री हजारीलालजी अग्रवाल   माता नानीबाई अग्रवाल

आपकी पुण्यस्मृति में–नारायणदास गुप्त, सारंगपुर
शिवप्रसाद गुप्त, नई दिल्ली, हरिकृष्ण गुप्त, ब्यावरा (म०प्र०)

आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिएँ ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।